शांति सुमन के गीतों के निहितार्थ

पाँच दशकों से भी अधिक समय से शांति सुमन साहित्य की अब भी पठनीय और सरस गीत के सृजन क्षेत्र में लगातार सक्रिय हैं। अब तक इनकी गीत और कविता की बीस से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं और अब भी इनकी उर्जस्विता को देखते हुए ऐसा लगता है कि काफी गीत इनमें बचे हुए हैं जो आगामी कई-कई और पुस्तकों में शामिल होंगे। जितने विपुल और बहुआयामी संदर्भों, विषयों और अनुभवों को अपने गीतों में इन्होंने समेटा है, वैसा मेरी जानकारी में नहीं कि किसी गीतकार ने समेटा हो। यहां तक कि जो किंवदंती और कालजयी कवि के रूप में ख्यात हैं, उनमें भी इतना वैविध्य और बाहुल्य दिखाई नहीं पड़ता।

एक पाठक के रूप में मुझे ऐसा लगता है कि कविता अगर बची हुई है तो ज्यादातर वह अपनी गीत विधा के कारण ही बची है। अनगढ़, अतुकांत और प्रवचननुमा कविता की शुष्कता, नीरसता और बोझिलता को गीतों ने अपनी गेयता, लयात्मकता, भावोत्पादकता और सरलता से बचा लिया है और गीत अब भी पढ़ने और सुनने में दिल में उतरते हैं और अपनी छाप छोड़ जाते हैं। ऐसा नहीं कि गीतों में सिर्फ कोमल भावों और प्रेम के आलोड़न ही समाहित हुए, बल्कि गीतों ने उन तमाम दुखों, उत्पीड़नों, विसंगतियों और संक्रमणों को अभिव्यक्ति दी जो जीवन को कठिन और बोझिल बना देते हैं। शान्ति जी ने खुद लिखा है कि गीतों में पीड़ा, त्रास, घुटन, अभाव, शोषण के साथ अमानवीयता के प्रति आक्रोश भी उभरकर आते रहे हैं। शान्ति जी के गीतों में भी तमाम चुनौतियों के रंग भरे हुए हैं। इन्हें पढ़ते हुए साफ महसूसा जा सकता है कि ये कविताई बौद्धिक विलास के लिए नहीं या सिर्फ स्वांत:सुखाय नहीं करतीं, बल्कि एक सरोकार और दुनिया को बेहतर और सुंदर बनाने की कहीं न कहीं एक कामना, एक तड़प और प्रयोजन इनके गीतों-नवगीतों में सर्वत्र समाहित है। वे कहती हैं कि—"चाहे रहो गांव में भाई/चाहे रहो शहर में/चुप होकर अब नहीं बैठना/अपने टूटे घर में।" यहाँ एक सीधा आह्वान है कि बहुत सह लिया, अब सहने की सीमा का त्याग करो और अपने हक के लिए प्रतिरोध की आवाज बुलंद करो।

इन्होंने अपने गीतों में गांव के जर्रे जर्रे को बड़े करीने से रचा है और उनमें व्याप्त असमानाताओं और अनियमितताओं को मुखर स्वर दिया है। इसलिए इनका स्वर प्रतिरोध और प्रतिपक्ष का स्वर है, जिनमें आह्वान भी है, परामर्श भी और धिक्कार भी। मुठभेड़ सा करती हुई वे कहती हैं कि "काले कौवे खा जाते हैं/छीन हाथ से रोटी/अभी तलक उनको जीने की/आई नहीं तमीज/अपना घर पक्का बनवा/तूफान उड़ाते जो/उनके अगुआरे बोयेंगे/गरम आग का बीज"—चुनौती देती इन पंक्तियों में एक ललकार है कि अब नहीं सहना है जुल्म ढानेवाले आततायियों को।

—जयनंदन

ISBN : 978-93-87638-80-8

Rs.300.00

Scanned by CamScanner

सान्निध्या

सान्निध्या

शान्ति सुमन

समीक्षा प्रकाशन
दिल्ली/मुजफ्फरपुर

ISBN : 978-93-87638-80-8

प्रथम संस्करण
2021

सर्वाधिकार ©
डॉ. शान्ति सुमन

प्रकाशक
समीक्षा प्रकाशन
जे.के.मार्केट, छोटी कल्याणी
मुजफ्फरपुर (बिहार)–842001
फोन : 09334279957, 09905292801
E-mail : samikshaprakashan@yahoo.com
www : samikshaprakashan.blogspot.com
samikshaprakashan.in

दिल्ली कार्यालय
आर-27, रीता ब्लॉक
विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली–92
मो.-07970692801

पृष्ठ-सज्जा
सतीश कुमार

मुद्रक
बी०के० ऑफसेट,
शाहदरा, दिल्ली।

मूल्य
300.00 (तीन सौ रुपये)

Sannidhya

by **Shanti Suman**

Rs. 300.00

शुभायुष्मान्
शालीना–अनीश
और
शुभायुष्मान्
श्रीया–इशान
को
अमित
शुभाशीषमय
शुभकामनाओं के साथ
जो मेरे आत्मीय और प्रिय हैं।

अनुक्रमण

1.	खाली हाथों में फूल	65
2.	ऋचायें उतरीं	67
3.	बच्चे अँधेरे के	69
4.	सालों भर वसंत	71
5.	धार समय की	73
6.	दुनिया अपनी	75
7.	सपनों वाला धागा	77
8.	प्रेमपत्र मुरइन पर	79
9.	मन के पन्ने	81
10.	सवाल बोते हैं	83
11.	खेत के मेड़ों से	85
12.	हँसी बेगम बेलिया	87
13.	हवा कहने लगी है	89
14.	अगवानी में वसंत की	91
15.	खिलेगी केतकी	93
16.	बादल बरसा	95
17.	नदी नहाती	97
18.	रेतों पर निशान	99
19.	बड़े यतन से	101
20.	सीपिया शंखों वाली	102

21. कितने आसमान 104
22. आधी हँसी हँसकर 106
23. आ गये हैं गाँव 108
24. किरण एक उजली 109
25. नीलकमल कहता 111
26. फूलों के कानों में 113
27. पीली धोती में 115
28. हरियाली लय की 117
29. हिले हैं धान 119
30. फूल के गहने 121
31. उलझी रही हवा 123
32. पहला प्रेम 125
33. खुशबू के पानी 127
34. फूलों के दिन 129
35. दूब सी फैली 131
36. खुशबू के घर में 133
37. हवा बाँटती गीत 135
38. अकेली धूप नहीं 137
39. अनमना मन 139
40. काँटे चुभाता समय 141
41. चुप रखता समय 143
42. साँस बो रहे 145
43. दौड़ने लगती सड़कें 147
44. अधरों में लालिमा 149
45. पहले जैसा नहीं 151
46. बेलपत्र पर फूल 153
47. अपनापन से घर 154
48. रुका मेघ बरसे 156
49. नमी बचाये हम 158
50. नदी नहीं बहती 160
51. इन्तजार आँखों का 162
52. घर हो अपना 164
53. माँ के सम्बन्ध 166
54. खेतों को पता नहीं 168
55. डरा अपनापन 170
56. अपनी नियति लिखो 172
57. निर्भय चिड़िया 174
58. सेनुर लगे हाथ 176
59. उत्सव के पंख 178
60. सूखी रेतों में 180
61. रंग नीलकमल के 182
62. जड़ से जुड़े रहे 184
63. गोरी-दुबली धूप 186
64. इमनवाली तान 188
65. खुशी से डर 190
66. कोई कह दे 192
67. हरियाती दूब 194
68. उगी धूप है 195
69. शब्द-शब्द माँ के 197
70. दिन ही जाने 199
71. नहीं दीखते दिन 201
72. आँचर का महुआ 202

73.	अब आये	204
74.	आकाश सुहाना	206
75.	धूप-हवा से बातें	208
76.	घर	210
77.	आये हम घर	212
78.	सपने साथ चले	213
79.	घर खोजती चिड़िया	215
80.	सब रहे अधूरे	217
81.	उजला आसमान	219
82.	रुका हुआ है वहीं	221
83.	चुटकी भर अपनापन	223

■

ढेर सारे खट्टे-मीठे और तिक्त अनुभवों की सशक्त अभिव्यक्ति है 'सान्निध्या'

—जयनंदन

पंडित नरेन्द्र शर्मा ने कहा था कि गद्य जब असमर्थ हो जाता है तो कविता जन्म लेती है। कविता जब असमर्थ हो जाती है तो गीत जन्म लेता है। यही कारण है कि व्यापक जन जीवन में फिल्मी व साहित्यिक गीतों की गहरी पैठ परिलक्षित होती रही है। गीतों और गीतकारों की एक सुदीर्घ परंपरा हमारे साहित्य में विद्यमान है। इसी समृद्ध परंपरा की शांति सुमन एक प्रमुख और प्रभावशाली कड़ी हैं।

पाँच दशकों से शांति जी साहित्य की अब भी सर्वाधिक पठनीय और सरस विधा गीत के सृजन क्षेत्र में लगातार अपनी सक्रियता बनायी हुई हैं। गीतों की अब तक इनकी पन्द्रह पुस्तकें प्रकाशित हैं और अब भी इनकी उर्जस्विता व प्रतिबद्धता को देखते हुए ऐसा लगता है कि काफी गीत इनमें बचे हुए हैं, जो आगामी कई-कई और पुस्तकों में शामिल होंगे। जितने विपुल और बहुआयामी संदर्भों, विषयों और अनुभवों को अपने गीतों में इन्होंने समेटा है, वैसा मेरी जानकारी में नहीं कि किसी गीतकार ने समेटा हो। यहाँ तक कि जो किंवदंती और कालजयी कवि के रूप में ख्यात हुए हैं, उनमें भी इतना वैविध्य और बाहुल्य दिखाई नहीं पड़ता।

एक पाठक के रूप में मुझे ऐसा लगता है कि कविता अगर बची हुई है तो ज्यादातर वह अपनी गीत विधा के कारण ही बची है। अनगढ़, अतुकांत और प्रवचननुमा गद्य कविता की शुष्कता, नीरसता और बोझिलता

को गीतों ने अपनी गेयता, लयात्मकता, भावोत्पादकता और सरलता से बचा लिया है और गीत अब भी पढ़ने और सुनने में दिल में उतरते हैं और अपनी छाप छोड़ जाते हैं। ऐसा नहीं कि गीतों में सिर्फ कोमल भावों और प्रेम के आलोड़न ही समाहित हुए, बल्कि गीतों ने उन तमाम दुखों, उत्पीड़नों, विसंगतियों और संक्रमणों को अभिव्यक्ति दी जो जीवन को कठिन, बोझिल और त्रासदायक बना देते हैं।

शान्ति जी ने खुद लिखा है कि गीतों में पीड़ा, संत्रास, घुटन, अभाव, शोषण के साथ अमानवीयता के प्रति आक्रोश भी उभरकर आते रहे हैं। स्वाभाविक है कि इनके गीतों में भी तमाम चुनौतियों के रंग भरे हुए हैं। इन्हें पढ़ते हुए साफ महसूसा जा सकता है कि ये कविताई बौद्धिक विलास के लिए या सिर्फ स्वांत:सुखाय नहीं करतीं, बल्कि एक सरोकार और दुनिया को बेहतर और सुंदर बनाने की कहीं न कहीं एक कामना, एक तड़प और प्रयोजन इनके गीतों-नवगीतों में सर्वत्र समाहित है। वे कहती हैं कि—**"चाहे रहो गांव में भाई/चाहे रहो शहर में/चुप होकर अब नहीं बैठना/अपने टूटे घर में।"** यहां एक सीधा आह्वान है कि बहुत सह लिया, अब सहने की सीमा का त्याग करो और अपने हक के लिए प्रतिरोध की आवाज बुलंद करो।

इन्होंने अपने गीतों में गांव के जर्रे-जर्रे को बड़े करीने से रचा है और उनमें व्याप्त असमानताओं और अनियमितताओं को मुखर स्वर दिया है। इसलिए इनका स्वर प्रतिरोध और प्रतिपक्ष का स्वर है, जिनमें आह्वान भी है, परामर्श भी और धिक्कार भी है। मुठभेड़ सा करती हुई वे कहती हैं कि **"काले कौवे खा जाते हैं/छीन हाथ से रोटी/अभी तलक उनको जीने की/आई नहीं तमीज/अपना घर पक्का बनवा/तूफान उड़ाते जो/उनके अगुआरे बोयेंगे/गरम आग का बीज।"**

चुनौती देती इन पंक्तियों में एक ललकार है कि सावधान हो जाओ, जुल्म ढानेवाले आततातियों। तुम्हारे सामने अब वंचित व शोषित लोग डटकर प्रतिकार करेंगे।

इस सद्य: प्रकाशित हो रहे नये गीत संकलन **'सान्निध्या'** में

इन्होंने अपने जीवन के ढेर सारे खट्टे-मीठे और तिक्त अनुभवों को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। इन नवगीतों में गाँव की उर्वर लेकिन उपेक्षित माटी के कई बिंबों, प्रतीकों और उपमाओं को अवलंब बनाकर मर्मस्पर्शी शब्दों व संवेगों से रची-बसी धारदार सृजनशीलता की बेजोड़ बानगी दिखाई पड़ती है। 'रेतों पर निशान' कविता में कहती हैं—**"आँखों के मोती सँभालकर/नहीं कभी जो रोई/दुख के पन्नों पर ही लिखती/मन की पीर संजोई।"**

कितना-कितना आघात और अपमान आदमी अपने भीतर दबाये रखता है और उन्हें दुनिया को दिखाने के लिए आँख में आंसू लाकर प्रकट नहीं करता। कवयित्री ने जो स्याह विधान सहा है उसे अब स्याही से बहा दिया है। इस कविता को पढ़ते हुए महादेवी की 'सन्धिनी' गीत-संकलन याद हो आता है। क्या ही संयोग है कि शांति जी की इस पुस्तक का नाम भी 'सान्निध्या' है। महादेवी ने कहा—विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात/वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास/अश्रु चुनता दिवस इसका/अश्रु गिनती रात/जीवन विरह का जलजात।

इसी तरह की एक कविता 'चुप रखता समय' में उन उलझनों को स्वर दिया है, जिसमें आदमी कमजोर बन जाता है—**"धीरे-धीरे भीरु बनाता समय हमें/कड़ियाँ उलझन की पहनाता समय हमें/फूल भी फेंकने से/हाथ बहुत थे दुखते/उठाते पत्थरों को/नहीं पसीने दिखते/अब घर नहीं मकान दिखाता समय हमें।**

समय का प्रवाह आदमी को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में जीने के लिए विवश कर देता है। जिस हाथ को फूल भी भारी लगता था, उसे समय की मार के कारण वजनदार पत्थर भी उठाने की लाचारी भोगनी पड़ जाती है। कवयित्री ने एक समय में अपने घर के नैसर्गिक सगापन और सुमधुर लगाव को जिया है, उसे अब मकान का निर्मम परायापन और कृत्रिम सुख की कल्पना से भय होता है। घर और मकान का फर्क अति संवदेनशीलता के साथ यहां परिभाषित है। इसी तरह के भाव शांति जी ने 'अपनापन से घर' कविता में भी व्यक्त किया है—**"जैसे तुम**

आयी, मैं भी आयी/अंतर यही कि मैंने घर को अपना माना/अपनापन से अधिक सुगंधित/फूल नहीं होता बगान का/अपनापन से ही घर होता/वरना वह ढांचा मकान का।"

घर और मकान के द्वंद्व को उजागर करते हुए कवयित्री कहती हैं कि आत्मीयता, सौहार्द और पारस्परिक स्नेह-प्यार के बिना घर घर नहीं सराय या मकान बन जाता है। यह अलौकिक अनुभूति किसी भी खूबसूरत और खुशबूदार फूल से कहीं ज्यादा दिव्य और मनमोहक होती है। लेकिन विडम्बना है कि आज के समय में ज्यादातर घर मकान में ही तब्दील हो गये हैं। ऐसे में इस गीत का आह्वान हमें ठिठककर सोचने के लिए विवश कर देता है।

आज आपसी रिश्तों की बुनियाद खुदगर्जी पर टिक गयी है। पहले एक पारंपरिक आत्मीयता और सान्निध्य की घनी छाया में जो रिश्ते फलते-फूलते थे, उनका विलोपन हो गया। इसी भाव को दर्शाती है 'इंतजार आँखों का' शीर्षक कविता—**"आपसदारी रिश्ते-नाते/कहाँ गये/समझौते केवल समझौते/नये-नये/इंतजार आँखों का काला हिरण हुआ/खोजे जंगल में जल/प्यासा कंठ सुआ/बोल सहज मीठे-मीठे से/कहाँ गये।"**

काल का पहिया स्थिर नहीं रहता है। वह सृष्टि की छाती पर परिवर्तन की निर्मम मुहर लगाता रहता है। कवयित्री ने 'पहले जैसा नहीं' शीर्षक गीत में कहा है—**"बादल बरसता था पहले भी/आज भी बरसता है/पहले जैसा नहीं/सूरज सरकता था पहले भी/आज भी सरकता है/पहले जैसा नहीं/हँसा था कहानी में राजा/अब भी हँसता है/पहले जैसा नहीं।"**

पर्यावरण के विनाश ने मौसम और प्रकृति की धुरी बदल दी है। कभी रहा था इस धरती पर राम-राज्य, अब तो बस सत्ता के सिंहासन से झूठ और फरेब के ही रथ चलाये जा रहे हैं। राजा की हंसी में पवित्रता की जगह छल और पाखंड का विषैला रसायन मिल गया है।

जंगल के जीव-जन्तु प्रायः अपनी जरूरतें जंगल से ही पूरी कर

लेते थे। अब वे पानी के लिए भी तरस रहे हैं। मौसम भी दगाबाज हो गया है। पानी का इंतजार काले हिरण की तरह विलुप्त हो गया है। अभिधा में रचा यह गीत सुग्गे के माध्यम से कहता है कि उसकी प्यास ने उसके मीठे बोल को अनुपलब्ध बना दिया है।

'रुका मेघ बरसे' गीत में कवयित्री ने जीवन की आंतरिक उदासी और रिक्तता का एक मार्मिक रूपक रचा है। तमाम तरह की सुख-समृद्धि के बावजूद एक अधूरापन... एक विरक्ति कहीं भीतर ठहरी हुई है। उसे किसी से व्यक्त भी नहीं किया जा सकता। भीतर ही भीतर वह मन को गीला करता रहता है। ऐसा क्यों है, इस पहेली को कोई समझ नहीं सकता।

बाजारवाद पर प्रहार करते तथा उसे धिक्कारते हुए 'मां के संबंध' कविता आधुनिकता को चुनौती दे देती है। कहती है—**"बेच सकोगे ओ बाजारों/क्या माँ के संबंध/अवलम्ब पिता के/पति-पत्नी के अनुबंध/मंत्र शुचिता के/केवल भरमाया तुमने/लोगों को बहकाया/चीजों में रंग-बिरंगी/बिखरा अपनी माया।"**

बाजार की तड़क-भड़क और उसका लुभावना संसार सिर्फ एक भ्रम है। वह कभी भी निर्मल रिश्तों के बीच बने पुल की जगह नहीं ले सकता। 'अधरों पर लालिमा' कविता में उन्होंने कहा है—**"अधरों पर लालिमा लिये/अंतर बहती स्याह नदी/ऐसी समकालीन सदी/पसर गये बाजारों में/संबंध चीज में बदल गये/बिकते खून-पसीना में/मन के मीठे दिन विफल गये/दुखते जेठ महीने में भी है भीतर की सरदी।"**

यह सच है कि बाजार ने हित-मीत के संबंधों को बहुत प्रभावित किया है। हर घर को महंगे कपड़े, गहने और आधुनिक उपभोक्ता वस्तुएँ चाहिए। अगर ये पूरे नहीं होते तो पति-पत्नी के रिश्ते भी कड़वाहट में बदल जाते हैं। इस त्रासदी को यह कविता बहुत अच्छी तरह प्रतिबिम्बित करती है।

'चुटकी भर अपनापन' में कवयित्री ने कहा है—**"तय कर दी बाजारों ने/चीजों में खुशियाँ/दिन भर गपशप में बुनती/मतलब की**

हँसियाँ।"

अगर घर में विलासिता के सरंजाम टीवी, फ्रिज, एसी, वाशिंग मशीन आदि नहीं है तो घर में एक असंतोष और नाराजगी उतर आती है। ऐसे में गृहिणी और बच्चों की हँसी भी असली की जगह मतलबी बनकर रह जाती है।

लड़कियों के संकोच और झिझक को संबोधित करते हुए उनकी कविता 'निर्भय चिड़िया' कहती है–**"बढ़ो आगे/छू लो आकाश/ बेटियाँ, करो कोशिशें/देखो तो दुनियादारी को/अपनी ही आँखों/ उड़ती जैसे निर्भय/चिड़िया अपनी पांखों।"**

अपने को सक्षम बनाकर स्वावलंबी बनने की कवयित्री वैसी ही सलाह देती है जैसे चिड़िया खुद अपने ही दम पर आकाश में विचरण करती है। बेटियां अब तक शोषण और उत्पीड़न की शिकार होती रही हैं, वक्त आ गया है कि वे अपने पंख उगाकर उड़ान भरें।

इस संग्रह के कई गीतों में गाँव, किसान, खेती-बारी, फूल और फसल ने भी अपनी दस्तक देते हुए अपने दुख के इजहार किये हैं। बिहार की मुख्य फसल धान के हवाले से इन्होंने कहा है–**"गाय नहीं थीं माँएं अपनी/खेतों में दिन उनके/रोपे बीहन हरे धान के/हाथ चूड़ियाँ खनके।"**

एक और कविता है 'हिले हैं धान'–**"गमकते हैं दालान/हवा बह रही अगहन की/लय में हिले हैं धान/पत्ती हिलती पुरइन की।"**

एक और कविता है 'खेतों के मेड़ों से'–**"लीपती है आज पीली/मिट्टी से घर को/गेरू से लिखकर/न्योतेगी देव-पितर को/ अब खुशियों में नया/धान भी है शामिल।"**

चूंकि शांति जी ने लंबे समय तक गाँव का सरल, सच्चा और अभावों से भरा जीवन देखा है, अत: किसानी जीवन के हर क्रिया-कलाप की गवाह रही हैं। धान का समय जब आता है तो उसके रोपने से लेकर उसके खलिहान में आने तक किसानों के जीवन में एक लयात्मक और उम्मीदों से लबरेज दिनचर्या समा जाती है। किसानों की व्यथा को बयान

करती हुई उनकी 'सांस बो रहे' कविता कहती है–**"भूख तो कहीं पर प्यास बो रहे/खेतों में किसान सांस बो रहे/पानी इतना ही खेतों की/प्यास नहीं बुझती/बीजों को चिड़िया/ऊपर ही ऊपर चुन लेती।"**

किसान के दिन कभी आरामदायक नहीं होते। हमेशा उसके दिन मुश्किलों से भरे ही रहते हैं, फिर भी वह हिम्मत नहीं हारता। रूखी-सूखी खाकर भी वह खुश रहता है और धूप से पसीने में नहाकर वह कड़ी मेहनत से कभी पीछे नहीं हटता। उसकी मेहनत का ही मोल आहार बनता है सकल जीव-जन्तु के लिए। 'नमी बचाये हम' शीर्षक कविता की पंक्तियां हैं–**"चले कठिन दिन में भी/हँसे हँसाये हम/ जितनी धूप नहाये/नमी बचाये हम/ जीवन में सबके ही/मोल चुकाये हम/सुख-दुख किस्से अपने/ लिखे-लिखाये हम।"**

कल्पना या स्वप्न जो पूरे नहीं होते वे बड़े रोचक होते हैं। समय के पास नजर नहीं होती कि कल जो घटित होने वाला है उस सच को उजागर कर दे। जिस राज भवन के दरीचे पर चिड़ियों का घोंसला था, वे अब झाड़-पोंछकर नये रंग-रोगन के हवाले कर दिये गये हैं। 'आकाश सुहाना' शीर्षक गीत अपने सुगठित छंदों द्वारा यह भाव मुखरित करता है–**"आकाश नहीं दीखा जो/होगा वह बड़ा सुहाना/ होता था तब सपनों में/आकर भी आना-जाना/ नहीं समय की आँखें थीं/सच था कुछ नया बहाना/राजभवन का चिड़ियों को/था पिछला पता पुराना।"**

शांति जी के गीत पढ़ने में सामाजिक विसंगतियों से परिचित कराते हुए जितना रसास्वाद सृजित करते हैं, उससे ज्यादा तब करते हैं जब वे उन्हें स्वयं अपने मधुर कंठ से लय में गाकर सुनाती हैं। इनके गीतों पर जितना कहा जाये, कम हैं। लेकिन इस कम को ही ज्यादा समझा जाये। मेरी अनंत शुभकामनायें।

■

डॉ. शान्ति सुमन :
हिन्दी गीत की उत्सव भंगिमा

—यश मालवीय

डॉ० शान्ति सुमन के गीतों से बचपन से ही अपनापा रहा है, बल्कि कह सकते हैं कि उन जैसे गीत कवियों को सुनता हुआ ही बड़ा हुआ हूँ। छोटे मगर दिल की तरह धड़कते महाबीरन गली के उस छोटे से कमरे में कवि पिता उमाकांत मालवीय के गीतों के साथ माहेश्वर तिवारी, रमेश रंजक और शान्ति सुमन के गीत भी गूँजा करते थे। यह गीत वह होते थे जो जाने अनजाने प्रकारान्तर से मुझे गीत के ही संस्कार दे रहे थे। उस समय काव्य मंचों पर धूम मचाने वाला शांति जी का एक गीत इस समय भी याद आ रहा है—**"केसर रंग रंगा मन मेरा, सुआपंखिया शाम है/बड़े प्यार से सात रंग में, लिखा तुम्हारा नाम है।"** या **"हाथों में एक दो मूँगफली/और कुछ अंतरंग बातें/साँसों में तह करके रख लें हम/पार्कों में हुई मुलाकातें।"**

यश यानी मैं और छोटा भाई वसु कहते, 'हाँ! वही मूँगफली वाला गीत सुनाइए।' और बस सहज भाव से शांति जी हम बच्चों की फरमाइश पूरी करतीं, सुरीले कण्ठ में पूरा गीत हमारे सामने होता। उस समय शांति सुमन ही हमलोगों के लिए लता मंगेशकर थीं। आकर चली जातीं तब भी बहुत दिन तक पूरा घर उनके गीत गुनगुनाया करता।

आज भी वह कमरा बहुत याद आता है, जहाँ भवानी प्रसाद मिश्र, मुकुट बिहारी सरोज, वीरेन्द्र मिश्र, भारतभूषण, सोमठाकुर, अमरनाथ श्रीवास्तव, नचिकेता, सत्यनारायण, गोपी बल्लभ सहाय, कैलाश गौतम,

बुद्धिनाथ मिश्र सरीखों की बैठक होती थी। छतफाड़ ठहाकों के बीच कोई संजीदा गीत या कविता जब उभरते थे तो बेसुरा समय भी जैसे लय में बँध जाया करता था। सत्तर का दशक था। नया गीत अथवा नवगीत अपनी पूरी शक्ल अख्तियार कर चुका था। नवगीत के बीच ही से जनगीत की स्पष्ट आहट सुनायी देने लगी थी। नवगीत बनाम जनगीत की गरमागरम बहसों का वह पुराना किराए का मकान आज भी साक्षी है। पिता, शांति जी को नवगीत की अकेली कवयित्री मानते थे, पर समय का तकाजा था जो सुमन जी के गीतों में जनवाद का संवादी स्वर भी दिखने लगा था, हालांकि यह संवादी स्वर कभी-कभी विवादी स्वर की सीमा तक भी पहुँचता था। उस वक्त तक शान्ति सुमन जी की तीन किताबें घर पर थीं। नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' साहित्यिक परिदृश्य पर एक सार्थक उपस्थिति दर्ज करा चुका था। नचिकेता जी के साथ 'सुलगते पसीने' नाम से भी एक संग्रह मंजरे आम पर था। एक उपन्यास 'जल झुका हिरन' भी उन्हीं दिनों प्रकाशित हुआ था, जिसका नायक मेरी ही नामराशि का है। 'यश' नाम के नायक वाला वह उपन्यास मुझे आज भी प्रिय है, जिसे शांति जी ने पिता जी को 'प्रिय मालव के लिए' लिखकर भेंट किया था। ये लोग गंभीर साहित्य लेखन के साथ कवि सम्मेलन के मंचों पर जाना भी बेहद जरूरी समझते थे, कुछ तो आर्थिक जरूरतों के चलते और कुछ इस तर्क से भी कि काव्य मंचों से आम आदमी से सीधा संवाद स्थापित होता है। जनवाद का सामान्य जन वहीं सीधा टकराता था। शांति जी के गीत सैकड़ों कंठों में जीने जागने लगे थे, वह अपने अर्थगर्भित गीतों के साथ स्वर माधुर्य जोड़कर मणिकांचन योग उपस्थित कर देती थीं। उनके गीतों में आज की कविता का कथ्य शामिल हो रहा था। वह नवगीत को एक नयी भाषिक संरचना दे रही थीं। वह गीत को केवल गाए जाने की जकड़बंदी से भी बाहर ला रही थीं। उनके सरोकार व्यापक हो रहे थे। जनान्दोलनों में भी उनकी भागीदारी बढ़ रही थी सो गीत का कथ्य भी अर्थ विस्तार ले रहा था। गीत के मजबूत कथ्य के साथ उनका शिल्प भी कहीं से शिथिल नहीं पड़ रहा था

यद्यपि कविता की जरूरत के मद्देनजर वह नए-नए छंद भी आविष्कृत करती चली जा रही थीं। गीत अपना पूरा चोला बदल रहा था। गीत कवि तमाम षड्यंत्रों के बाद भी अपनी लेखकीय निष्ठा पर अडिग थे तो शायद इसलिए कि गीत, आत्मविश्वास की कविता हो चला था। गीत कवि किसी हीन ग्रन्थि के शिकार नहीं थे क्योंकि उन्हें जनता का प्यार मिल रहा था। गीत वस्तुतः जनता की कविता हो गए थे। आपात स्थिति के काले दिनों में इनकी भूमिका अलग से ही चिह्नित की जा सकती है। जनसभाओं, नुक्कड़ सम्मेलनों में यह गीत ही थे जो विरोध का स्वर मुखरित कर रहे थे। बाबा नागार्जुन के साथ डफली पर जीवन राग के गीत गाए जा रहे थे। प्रतिरोध की कविता से वातावरण बदलने लगा था। इसी प्रतिरोध की संस्कृति के एक विनम्र किंतु दृढ़ स्वर के रूप में डॉ० शान्ति सुमन एक सांस्कृतिक हस्तक्षेप कर रही थीं। भीड़ का आदमी ही उनकी रचना का सच निर्धारित कर रहा था। वह प्रतिबद्ध रचना मानसिकता से उन बिंदुओं की तलाश कर रही थीं कलांतर में जहाँ से गीत के प्रस्थान बिंदुओं की शिनाख्त हो सकी। उनकी भाषा पर्याप्त खुरदुरी हो चुकी थी, उनमें आम आदमी का दर्द व्यक्त हो रहा था।

आज गीत-नवगीत-जनगीत की इस जययात्रा को देखता हूँ तो गर्व का अनुभव होता है। कंकड़ीली-पथरीली-रपटीली राहों और टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से होता हुआ हिन्दी गीत आज जहाँ पहुँचा है उस यात्रा में डॉ० शान्ति सुमन की अनथक रचनात्मक जिजीविषा भी शामिल है, जिसने आलोचकों-समीक्षकों की किंचित भी परवाह किये बिना गीत की लौ जगाए रखी, छंदधर्मी चेतना से आत्मा के अंधकार में भी उजाला किया। वह 'गमले के करोटन' के प्रतीक से एक बड़ी बात कहती हैं—"बहुत खुश हूँ/खुश बहुत हूँ/हाल अपना लिखो/क्या हुआ कल रात आयी/जोर की आँधी/नीबुओं की पत्तियाँ फिर/रात भर जागीं/समय कम है/कम समय है/हर मुहिम पर दिखो।"

'नींबुओं की पत्तियों का रात भर जागना' कोई मामूली बात नहीं है। यह एक गंभीर अर्थ संकेत है। समय का टोटा है इसलिए प्रतिक्षण

मुस्तैद रहने की गहरी आवश्यकता कवि द्वारा रेखांकित की गयी है ताकि हर मुहिम पर न केवल दिखायी पड़ा जाए बल्कि संघर्ष को एक सार्थक एवं दिशाबोधी अंजाम भी दिया जा सके जिससे मनुष्य की जिजीविषा की जय पताका धरती के वक्ष पर खड़ी होकर खुले आसमान में अबाध गति से लहरा सके।

रागात्मकता शांति सुमन के गीतों का रीढ़ तत्व है। यह व्यक्ति का राग तो है ही वृहत्तर सामाजिक परिप्रेक्ष्य का अनुनाद भी है। वह काव्य रूढ़ियों से समझौता नहीं करतीं। वह कविता को एक बड़ा फलक देने की पक्षधर हैं इसलिए सामान्य बिम्ब एवं प्रतीक उठाकर भी उन्हें एक वैशिष्ट्य दे देती हैं। सामने की देखी हुई चीज भी लगता है जैसे पहली बार देख रहे हैं, वह अपनी कविता की आँख से वह कोण उपलब्ध कराती हैं, जो सामान्य आँखों से प्रायः नजरअंदाज हो जाया करते हैं।

कभी-कभी तो सहज अभिव्यक्ति से चमत्कृत हो जाना पड़ता है। गीत का मुखड़ा ही जैसे सब कुछ बयान कर देता है, वह कहती हैं—**"तुम मिले तो बोझ है कम/बहुत हल्की पीठ की गठरी/फूटते धानों सरीखे/हम बढ़े, बढ़ते गए/फुनगियों से फसल की/सपने बहुत कढ़ते गए/दिनों की बारिश गयी थम/तुम हँसी से हो गयी दुहरी।"**

किसी के मिल जाने पर पीठ की गठरी का बोझ कम लगने लगना अपने आप में वह जीवन-क्षण है जहाँ आकर कविता भी अपने आप को धन्य अनुभव करने लगती होगी। यह गीत पढ़ते हुए शान्ति सुमन का वह प्रसिद्ध गीत भी बरबस याद आता है, जहाँ वह कहती हैं—**"तुम आए/जैसे पेड़ों में पत्ते आए।"**

ऐसी सर्जनाशील, स्त्री स्वाभिमान से जुड़ी गीत कवयित्री डॉ० शान्ति सुमन के दीर्घ सुखी एवं कर्मनिष्ठ जीवन की मैं कामना करता हूँ ताकि नवगीत के उत्तर नवगीत और जनगीत के उत्तर जनगीत तक की एक और सृजन यात्रा संभव हो सके। आज का हिन्दी गीत इसी प्रतीक्षा में है।

■

जीवनराग की कुशल गीतकार हैं शांति सुमन

—अखिलेश्वर पांडेय

डॉ० शान्ति सुमन के रचनाकर्म का मूल्यांकन करते हुए कई विद्वानों ने उन्हें छायावाद की महीयसी महादेवी वर्मा से जोड़ा तो कई ने उन्हें सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी बताया, कई विद्वानों को उनके गीतों में जयदेव और विद्यापति की झलक मिली तो कई ने उन्हें नागार्जुन के समकक्ष घोषित किया। मिथिला की गरीबी का ऐसा सजीव चित्रण गीतों में है जिसके आधार हैं कतिपय आलोचकों ने उन्हें बिहार की महाश्वेता देवी घोषित कर दिया। इन सबसे परे हैं डॉ० शांति सुमन को जितना पढ़ और समझ पाया हूँ— वे जीवनगीत की रचना करने वाली अब तक की सबसे जादुयी कवयित्री हैं। उम्र के सातवें दशक के बाद भी उनकी रचनाओं में 'जीवनराग' मुखरित होता है। उत्साह-उमंग से सराबोर उनके गीतों से पतझड़ भी वसंत हो जाता है। हाल के वर्षों में प्रकाशित उनके गीत संग्रह 'लय हरापन की' और 'लाल टहनी पर अड़हुल' के गीत तो इतने टहकार हैं कि उनमें उनका प्रसन्न व्यक्तित्व फूलों की मानिंद अपनी आभा और रंग-गंध से पाठकों को वशीभूत कर लेता है।

जनगीत, जनवादी गीत और नवगीत की कसौटी पर कसना और बात है पर डॉ० शांति सुमन ने जो भी लिखा वह समय सापेक्ष लिखा। उनके आरंभ से लेकर अभी तक गीतों का अध्ययन करें तो यह बात साफ हो जाती है कि उनके बचपन से किशोरावस्था तक परिवार का अनुशासन, प्रतिष्ठित पिता का स्नेह, सादगी की प्रतिमूर्ति अपनी मां और

दादी के प्रति समर्पण और संस्कार का गहरा असर है। घर और बाहर, शांत रातों, दुपहरियों और सुबह-सबेरे, काम के समय, रात, उत्सव और अक्सर उन्होंने बाल्यावस्था में जो गीत सुने वे उनके संस्कार बनते रहे। शांति सुमन के सधे हुए कानों ने लोकगीतों और विद्यापति के गीतों, उसके उच्चारण और ध्वनि सौंदर्य को आत्मसात कर लिया। स्त्री जाति की अवमानना और पिछड़ेपन ने भी उन्हें प्रभावित किया। मुक्ति की छटपटाहट, परंपरा और संस्कारों की छाया, दोनों का द्वंद्व उनके रचनाकर्म पर स्पष्ट परिलक्षित है—**"मां की परछाईं सी लगती/गोरी दुबली शाम/पिता सरीखे दिन के माथे/चूने लगता घाम/.... याद बहुत आते हैं घर के/परिचय और प्रणाम।"**

सच तो यह है कि शांति सुमन के लेखन का तेवर कभी उम्र का मोहताज नहीं रहा। तभी तो उम्र के इस परिसर में भी वे अपने गीतों से 'सूर्य पर रोटी सेंक रही हैं।' उनके गीतों में संवेदना और आत्मीय संस्पर्श की नमी बहुत है जिससे विश्वसनीयता बनी रहती है और उसका मर्मस्पर्शी भावन भी उपस्थित रहता है। यही वजह है कि उनके जनवादी गीत जनता के जीवन में प्रवेश कर जाते हैं और उनके जीवन के हिस्से बन जाते हैं। संवेदनाओं से भरे उनके गीत सचमुच मानवीय चिंता के एकात्म से उपजे गीत हैं। जीवन के विविध रंगों को समेटे उनके गीत आत्मीय सुख और खुशी देते हैं। इन गीतों का एक-एक अनुभव अपना स्वयं का जिया हुआ क्षण लगता है। शांति सुमन के गीतों में भावना और संवेदना, नमी और तरलता, आत्मीयता और कोमलता तथा राग और स्मृति की धारा प्रवहमान होती है। उनके गीतों में संबंधों का एक रागात्मक लगाव है—यही जीवनराग है। वे सामाजिक सरोकारों की बेहद संवेदनशील कवयित्री हैं। वे कठोर और निष्ठुर होती जिंदगी के बीच छोटे-छोटे सुख की पहचान करती हैं और संकेत देती हैं कि जीवन इन झंझावातों में भी कहीं बचा है। रचनात्मक जीवन में उन्होंने अपने समय की चुनौतियों से टकराते हुए भी सृजनेच्छा एवं सृजनधर्मिता को अनवरत जीवंत रखा है। उनके भीतर गीत की संवेदना निश्चल एवं अमिश्रित है। उनके भावावेश

अलंकृत नहीं, स्वभावजन्य हैं—**"फटी हुई गंजी ना पहने/खाये बासी भात ना/बेटा मेरा रोये, मांगे/एक पूरा चंद्रमा।"**

पारिवारिक प्रसंगों को रूपायित करने में तो शांति सुमन को जैसे महारत हासिल है। रिश्तों के सभी संदर्भों में उन्होंने गीत लिखे हैं, उनके ऐसे गीतों में अभिव्यक्ति की सहजता और शब्दों की तरलता के साथ-साथ बिंबों की विशिष्टता देख आंखें जुड़ा जाती हैं। अपने आसपास बिखरी हुई जिंदगी पर वे गहन और व्यापक दृष्टि रखती हैं। आंगन, चौबारे, दालान, पोखर, बथान, खेत खलिहान, तितली, बादल, पेड़, फूल आदि बिंबों-प्रतीकों को पलकों की बरौनियों से पकड़-पकड़कर उठाती हैं और अपने गीतों में पिरोकर उसे जीवंत बना देती हैं।

रोजमर्रे की जिंदगी को उसी के मुहावरे में अभिव्यक्त करने में शांति सुमन दक्ष हैं। उनकी सहज रचनाधर्मिता के इसी कौशल के मुरीद मदन कश्यप ने लिखा है—'शांति सुमन हमारे समय की उन दुर्लभ गीतकारों में हैं जो शिल्पगत अथवा शैलीगत अलगाव के बावजूद सोच और संवेदना के स्तर पर समकालीन कविता से गहरे जुड़ी हुई हैं। उनके पास आज के यथार्थ की आंतरिक दृष्टि भी है और उसे उद्घाटित करने की कला भी।' 'मौसम हुआ कबीर', 'भीतर-भीतर आग', 'एक सूर्य रोटी पर' और 'धूप रंगे दिन' के अनेक गीतों में उनकी आंतरिक दृष्टि के अनुपम बिंब ऐसे सहज पारिवारिक स्वरूप में अभिव्यक्त हुए हैं जिन्हें देख आंखें आत्मीयता से भर आती हैं—**"बंदोबस्त हुआ अच्छा अब/भूखों नहीं मरेंगे लोग/अपने ही सपनों को खाकर/अपना पेट भरेंगे लोग।"**

शांति सुमन किसी आरोपित लीक को कभी स्वीकार नहीं कर पाईं। उन्होंने हर गलित व्यवस्था को नकारा है। वह व्यवस्था समाज की हो, राजनीति की या साहित्य की। शांति सुमन को नकारने की जितनी कोशिशें हुई वे उतनी ही तेजी से उभरती गईं। अपनी तेजस्विता और लोकधर्मी रचना दृष्टि के कारण उन्होंने अपनी अलग पहचान बनायी। उन्होंने हर चुनौती को न सिर्फ स्वीकार किया बल्कि हर बार नयी चुनौती का उद्घोष भी किया। कविता और गीतों को चांद से सूरज तक ले

गयीं। दूसरे गीतकार जहां चांद के प्रति अपना आकर्षण जता रहे थे डॉ० शांति सुमन सूरज को चुनौती दे रही थीं—**"थमो सुरुज महाराज, नयन काजर भर लें/बोये पिया पसीना, फसल सगुन कर लें।"**

डॉ० शांति सुमन के पिता भवनंदन लाल दास 'डिफेंस' में थे, यही वजह है कि अन्याय की मुखालफत करना, गलत के खिलाफ विद्रोह करना उनके स्वभाव में है। इसीलिए उनके गीतों में सामाजिक चेतना का धारदार तेवर परिलक्षित होता है—**"भीतर-भीतर आग बहुत है, बाहर तो सन्नाटा है/सड़कें सिकुड़ गयी हैं भय से, देख खून की छापें/दहशत में डूबे हैं पत्ते, अंधकार भी कांपे/किसने है यह आग लगाई, जंगल किसने काटा है।"** यह सही है कि कवि हथियार से नहीं अपनी कविताओं से वार करता है। वह अराजकता, भ्रष्ट व्यवस्था और बर्बरता के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करता है कविताओं के माध्यम से। शांति सुमन के जनचेतना के जुझारू गीतों ने सदैव आम आदमी के मुक्तिगामी जनसंघर्षों और शोषित-पीड़ित मानवता का साथ दिया है।

भाषा, कथ्य एवं कहन की अनूठी शैली के कारण शांति सुमन उन सशक्त रचनाकारों में शामिल हैं जिन्होंने अपनी भावना के अनुकूल भाषा की खोज करने में प्रसिद्धि प्राप्त की है। वर्तमान समय में वे हिंदी गीत के प्रतिनिधि रचनाकारों में अपना महत्व प्रतिपादित कर चुकी हैं और उन्हें नवगीत की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री कहने में आलोचकों को भी संकोच नहीं रह गया है। डॉ० शांति सुमन की भाषा का रचाव उनकी सबसे बड़ी ताकत है। उनकी पंक्तियों में अनछुई कहन है, मुहावरों का सार्थक प्रयोग है, ताजे-टटके बिंब हैं। वे जीवन की ऐसी लय रचती हैं कि पाठक उन्हें पढ़ते-पढ़ते गाने लगता है—**"चांदनी की नदी में मछली सी चल के/रात-रात भर हम गीत गायें फसल के।/...../हँसती है तो घर को/फागुन-फागुन करती है/यशी नाम की हँसी/भर दिन गुनगुन करती है।"**

जनगीत के अनेक पक्षों में विपुल सृजन उनके विविधतापूर्ण रचना संसार का द्योतक है। उनकी सृजनशीलता समस्त विसंगतियों,

विषमताओं एवं विद्रूपताओं के बावजूद कहीं से भी निराशावादी नहीं है। उनके गीतों में जीवन का संचार है, उम्मीदें हैं, उल्लास है—**"फूलों से रूठी थी तितली/अब तो मान गयी/आते ही अपने मौसम के/उनको जान गयी/सम्मानों की भूखी है वह/केवल रस का लोभ नहीं/धूप-हवा सब देखें उसको/महज गांव के लोग नहीं।/..../दुख ने दुख को दिया निमंत्रण/सुख घर ले आया/बारिश में भी टूटी छत से/मेघ बहुत भाया।"**

शांति सुमन की गीत रचना ऐसी सहज है कि लगता है वे अपनी किसी अन्तरंग मित्र से बातें कर रही हों, शब्दों का कोई इंद्रजाल, बिम्बों का कोई घुमावदार प्रयोग भी उसमें नहीं है। गीत की लय तान दूरागत वंशी की धुन की तरह नहीं, जैसे कोई सामने बैठकर वंशी बजा रहा हो। घर-परिवार, समय-समाज के इतने समृद्ध और आत्मीय कथ्य-शिल्प अन्यत्र कम मिलते हैं जिनमें प्रकृति हो और जीवन भी—**"बह चली हैं बैजनी नदियाँ/खोलकर कत्थई हवा के पाल/लिखे गेरू से नयन के गीत/छपे कोंपल पर सुरभि के हाल/खेत के पतले हुए हैं रेह/बादल लौट आ।"**

प्रकृति और संबंध, उनकी आकुलता और सहज आकर्षण सब एक जैसे लगते हैं जब वे लिखती हैं—**"हवा लौटकर घर आई/होते ही अहले शाम/लेट गयी टहनी पर जैसे मां करती आराम।"**

गीत-काव्य का रसिक और साहित्य शुभेच्छु होने के नाते मेरी कामना है कि डॉ० शांति सुमन यूं ही जीवन-गीत रचती रहें और साहित्य जगत के मन प्राण को स्पंदित करती रहें।

■

डॉ. शांति सुमन की रचनाओं की पहुँच और जनवाद

—अशोक शुभदर्शी

अपने लेखन के प्रारंभ से ही डॉ० शांति सुमन जनवादी विचारधारा से लैस हैं। वे दलितों, पीड़ितों, शोषितों और निम्न मध्यवर्गीय समाज के दुखों को जानती-समझती रही हैं तथा उनके प्रश्नों को हल करने के पक्ष में दृढ़ता से खड़ी दिखती हैं। यह उनकी अपार करुणा, संवेदना के कारण ही संभव हुआ है। यहाँ किसी प्रकार का ओछापन नहीं है, तल्खी नहीं है, पात्रों-अपात्रों के प्रति असमान प्रेम नहीं है। यहाँ चरम गीत, चरम एकाग्रता है। इस एकाग्रता और लयता का तत्त्व वही है जो महादेवी का, निराला का रहा है। उन्हीं के अनुरूप यहाँ शब्द ध्वनि सीधे-सीधे समाज को संकट से उबारने के लिए है। यहाँ आस्था और श्रद्धा के केन्द्र में जन है।

डॉ० शांति सुमन प्रसिद्ध नवगीतकार ही नहीं, नवगीत को स्थापित करने और उसे पोषित करने वाले कुछ वरिष्ठ नवगीतकारों की अग्रिम पंक्ति में प्रमुखता के साथ उपस्थित हैं। इनके अनुसार ही इनके नवगीत जनगीत से अलग नहीं हैं। इनके लेखन की सभी विधाएँ कविता भी, उपन्यास भी, समालोचना भी, आलेख भी, जन की पीड़ा समझने के लिए और जनमन की चेतना के विकास के लिए है। वे यथार्थवादी हैं, जनवादी और प्रगतिशील चेतना से संपन्न हैं।

जनवादी गीतों और रचनाओं के स्रोत को समझते हुए हम कह सकते हैं कि आधुनिक साहित्य का स्रोत ही जनवादी गीतों-रचनाओं का स्रोत है। साहित्य अब दरबारी साहित्य नहीं है कि वह किसी से डरे। सच

को सच और झूठ को झूठ नहीं कह सके। अब साहित्य ने दिन को दिन में रात और रात में रात को दिन कहलाने वाले की मंशा पर पानी फेर दिया है। इससे बौखलाए असमाजिक तत्वों ने साहित्य को ही खारिज करने का बीड़ा उठा लिया है। ऐसे चरित्रहीन भ्रष्ट तत्त्वों का इरादा कभी पूरा नहीं होने वाला है। आज साहित्य समाज का प्रमुख प्रकाशपुंज है। जो सच बोलता है, सच लिखता है, वही साहित्यकार है। जो समाज की विसंगतियों पर जितना कड़ा प्रहार करता है वह उतना ही बड़ा साहित्यकार है। सच बोलना, सच लिखना, सच के लिए कुर्बान होने जैसा है। क्या वे सच साहित्य के तत्त्व नहीं हैं जिनको समाज के सामने रखने से कई विचारक, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी, वैज्ञानिक कुर्बान हो गये! उन्हें रूढ़िवादी तत्वों द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया। इसलिए कहना सही होगा कि सच बोलते हुए, सच लिखते हुए हर साहित्यकार अपना बलिदान ही देता है। कितने ही साहित्यकार सच लिखने के कारण रूढ़िवादियों द्वारा शिकार बनाये गये, किंतु वे झुके नहीं, वे अपने रास्ते चलते रहे। वे तर्क और विज्ञान की आवाज सुनते रहे। ऐसे ही रचनाकारों में आज एक बड़ा नाम है—डॉ० शांति सुमन का। इनके चिंतन का यह आधार दर्शन है।

डॉ० शांति सुमन की मूल विधा गीत है। गीत के बारे में समग्र दृष्टिकोण यह है कि गीत सबसे सरस, सहज और कोमल साहित्यिक विधा है। कोयल गाती है तो एक क्षण के लिए किसी को भी चाहे वह जितना भी कठोर हृदय वाला हो उसको द्रवित कर सकती है। गीत मनुष्य का ही नहीं, संपूर्ण प्रकृति का सबसे निर्मल स्वर है जो प्राणों को ऊर्जा से भर देता है। गीत दो प्रकार के होते हैं—अंतर्लयी और वाह्य या शाब्दिक। जो गीतकार अंतर्लयी गीतों को पकड़ने में जितना ही सक्षम हुआ उसका वाह्य गीत भी उतना ही ताकत और माधुर्य से भर गया है। डॉ० शांति सुमन गीत के समग्र दृष्टिकोण को पकड़ते हुए ही सक्षम गीतकार हैं। उदाहरण के तौर पर देखें—**"गेहुँओं की पत्तियों पर/छपा सारा हाल/फुनगियों पर दूब की/मौसम चढ़ा इस साल/रंग हरे हो गये पीले/बात में मितवा/मुट्ठियों में बंद कर ली/नागकेसर हवा।"**

अपने नवगीतों में गीतकार अपनी अंतरंग छवियों के बीच घर से लगाव महसूस करती हैं। अपने जनगीतों में अनुभव की सघनता के साथ सामाजिक यथार्थ और उसके विविध संदर्भों की नयी-नयी परतें खोलती हैं— **"कहीं-कहीं दुखती है/घर की छोटी आमदनी/धुआँ पहनते चौके/बुनते केवल नागफनी।"**

साथ ही सारी समाजार्थिक परिस्थितियों को गूंथते हुए विसंगत व्यवस्था के प्रति श्रमरत संघर्षजीवी वर्ग के साथ नयी पीढ़ी के क्रोध एवं आक्रोश, उसके प्रतिरोधों को सक्षम बिम्बों के साथ उन्होंने चित्रित किया है—**"अभी समय को खेतों में/पौधों सा रोप रहा/आँखों में उठने वाले/गुस्से को सोच रहा/रक्तहीन हुआ जाता कैसे गोदी का पालना/फटी हुई गंजी ना पहने खाये बासी भात ना/बेटा मेरा रोये मांगे एक पूरा चन्द्रमा।"**

एक चित्र और देखिये—**"इसी शहर में ललमनियाँ भी/रहती है बाबू/आग बचाने खातिर कोयला चुनती है बाबू/पेट नहीं भर सका/रोज के रोज दिहाड़ी से/सोचे मन चढ़कर गिर जाये/ऊँच पहाड़ी से/लोग कहेंगे क्या यह भी तो गुनती है बाबू।"**

इनके गीत पाठकों को, श्रोताओं को छू लेते हैं। ये गीत शब्दों के सहारे शब्दातीत हो जाते हैं और शब्दातीत हुए बिना कोई गीत चरम तक नहीं पहुँचता। गीत चरम को तब छूता है जब उसका अर्थ चरम को छूता है। गीत के इस अर्थ का विस्तार ही आज नवगीत और जनगीत है।

डॉ० शांति सुमन आज जहाँ हैं वे अपने नवगीतों से हैं। वे अपने नवगीतों की गंगोत्री भी हैं और समुद्र भी। समीक्षकों, समालोचकों ने इनके गीतों की थाह लगाने की कोशिश की है। समुद्र किनारे जाकर लहरों को छुआ जा सकता है, उसे देख-देख आत्मविभोर हुआ जा सकता है किंतु थाह लगाने की कोशिश व्यर्थ सिद्ध हो सकती है, जबकि ये गीत का समुद्र हैं। यहाँ एक-एक गीत भी एक-एक समुद्र है। समुद्र समुद्र इसलिए भी है कि वह जितना भरा है, उतना ही प्यासा भी। आकाश आकाश इसलिए है कि वह जितना भरा है उतना खाली भी।

इसका खालीपन भी उसके साथ उतना ही बड़ा है। इन प्रश्नों के उत्तर भी समुद्र के पास हैं और आकाश के पास वह प्यासा क्यों ? एक खाली क्यों है ? इनकी थाह लगाने वालों के पास नहीं। इन प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने वाले हमेशा अधूरे उत्तर ही पा सकते हैं।

जीवन-जगत के अंतर्तम को छू लेने वाले इनके गीत ही सच हैं और सच को प्रकट करते हैं। 'लय हरापन की' देखना जरा कठिन है। यह जीवन की आंतरिक लय है। यह दर्शन हमें जीवन के निकट ले जाता है। उन्होंने जिस हरापन की लय को देखा है उसके दरवाजे वे सबके लिए खोल देती हैं। जैसे समुद्र के दरवाजे खुले हैं, जैसे आकाश के दरवाजे। यह रचनाकार कहीं से भी सीमित नहीं है। शान्ति सुमन जी के गीतों की अर्थ-छवियों से इसका पता चलता है—**"धूप बचाने की खातिर/चादर की छाँह लिये/खुशियों के कितने मोती/ही हमने बाँट दिये/लगते हम राजे-महराजे/बहुत लगे भी कम।"**

एक यह भी बिम्ब-सघन अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है—**"सांस जैसे पहनती हो/प्यार की रंगीन भाषा/हल्दियों में घोलती हो/चंदनों का नरम 'कासा'/चूड़ियों की खनक वाली हँसी जो लहरी/हवाओं में लगे उड़ने अबीरों के सुर।"**

डॉ० शान्ति सुमन अपने शब्द, अपनी भाषा से भी विशिष्ट हैं। इनकी भाषा की पकड़ और शालीनता की हद से परे कुछ नहीं दिखता। वह एक स्वाभाविकता के साथ जन-जीवन के मर्म को परिभाषित करती है। गीतों के अलावे निबंधों, आलेखों में भी ये खुलकर प्रस्तुत होती हैं और पाठक सबकुछ सहजता के साथ समझ लेता है। इनकी यह भाषा कुटिलता पर निरंतर प्रहार करती रहती है और उसके छद्म परत-दर-परत पर्दाफाश होते रहते हैं—**"कौन कहे समय की भी/होती है सिलाई/काटता है वही/जो करता बोआई/कभी छोटी चिड़िया भी बाज को मरोड़े/रानी के पास हैं बहुत धन-हाथी-घोड़े/कौन है जो रानी के रथ को पीछे मोड़े!"**

स्त्री शक्ति की महत्ता सबने स्वीकार की है अर्थात शक्ति का

पर्याय है स्त्री शक्ति। गीत-कविता का आंतरिक तत्व स्त्री शक्ति से मेल खाता है।

गीतों-नवगीतों के सुमधुर, रोचक और अत्यंत प्रभावशाली होने के स्रोतों में यह भी एक महत्वपूर्ण स्रोत हो सकता है—**"यह भी हुआ भला/कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती शकुन्तला/...बलुआही मिट्टी पहने केसर का बाग जला/... एक सूर्य रोटी पर औंधा चाँद नून सा गला।"**

डॉ० शांति सुमन अति विशिष्ट गीतकार इसलिए भी हैं कि इन्होंने गीतों की यथास्थिति को तोड़ा और उसे नया रूप-रंग प्रदान किया। उनकी इस विशिष्टता के बारे में डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र कहते हैं—"महाकवि विद्यापति यदि आज होते तो ऐसे ही गीत लिखते। न भी लिख पाते तो कम से कम शांति सुमन की पीठ जरूर थपथपाते।" वे पुनः कहते हैं—"शांति सुमन की अपनी पीड़ा है, अपने शब्द हैं और अपने बिम्ब भी। इनके गीत पूरे हिन्दी काव्य-संसार में अलग पहचान रखते हैं। चाहे आप माने या नहीं माने, मगर इनका जादू सिर चढ़कर बोलता है, सिर्फ एक बार दो लफ्ज सुन तो लीजिए।"

साहित्य का आकर्षण दूसरा है। यह आकर्षण राजनीति, फिल्म और खेल का नहीं है। वहाँ चकाचौंध, ग्लैमर है। यहाँ एकांत है। यहाँ गुणग्राहकता और अनवरत श्रम है। यहाँ किसी को ठगने के लिए कुछ नहीं है। यहाँ पाने के लिए जिंदगी है और खोने के लिए भी जिंदगी है। यहाँ जिंदगी का मतलब है जिंदगी के करीब होते जाना। इतना तो डॉ० शान्ति सुमन कर ही सकती हैं कि वे राजनीति में जाकर बड़े पद पर आसीन होतीं। इनके पास और भी विकल्प थे, किंतु हट करके ये साहित्य में ही क्यों टिकी रहीं ? इसका सीधा सा उत्तर है कि जिंदगी में जो साहित्य से प्राप्त किया जा सकता है, चरित्र निर्माण से प्राप्त किया जा सकता है वह और किसी रास्ते से नहीं। साहित्यकार अपने साथ अपने युग को भी यादगार बना देता है। सूर, कबीर, तुलसी ने अपने युग को, अपने युग की राजनीति, समाज को भी अपने साथ ढोया है तो यह

साहित्य के कारण। जनजीवन को जितना एक साहित्यकार प्रभावित करता है उतना और कोई नहीं। सर्वप्रथम जिंदगी के लिए सही रास्ता चयन करने की आवश्यकता है।

दुखी, विपन्न, लाचार जनता के पक्ष में मजबूती से खड़ा होने के कारण ही इन्हें जन-जन का प्रमुख गीतकार घोषित किया गया है। यदि आज ये शीर्ष साहित्यकारों की पंक्ति में उपस्थित हैं तो यह सिर्फ इनके गीत-नवगीत के शिल्प और बिम्ब के कारण नहीं है बल्कि इस न्याय के कारण है कि इन्होंने दृढ़ता से जनवाद-प्रगतिवाद का पक्ष लिया है। इनके जनगीतों में नवगीत के शिल्प हैं तो इनके नवगीतों में बहुतायत से जनगीत के तत्व। इनके नवगीतों में जन-जन की पीड़ा उकेरी हुई है, उसके प्रति संवेदना है, करुणा है तो यह बहुत सोच-समझकर है। इनके जनगीतों-नवगीतों में गीत के गांभीर्य, उच्च विचार और सर्वोत्तम भावबोध हैं। इनके कथ्य और शिल्प हमेशा उच्च कोटि के होते हैं। इसीलिए डॉ० शांति सुमन अखंड, अद्वैत, शालीन, सुसंस्कृत और लोकनायिका की छवि से परिपूर्ण दिखती हैं।

समालोचना, आलेख, नवगीत, उपन्यास आदि सर्वत्र इनके साहित्य के मूल स्वर जनवादी हैं। इस जन पक्षधरता के कारण ही कभी कबीर लोगों को अपने लगे थे, निराला-नागार्जुन अपने लगे, उसी तरह आज डॉ० शांति सुमन आमजनों की अपनी हैं। कबीर, नागार्जुन की तरह डॉ० शांति सुमन की पहचान बनकर इनकी ये पंक्तियाँ संपूर्ण हिन्दी पट्टी में गूंज रही हैं—**"थाली उतनी की उतनी ही/छोटी हो गई रोटी/कहती बूढ़ी दादी/मेरे गाँव की।"**

भारत में जनवादी साहित्य के स्रोत कबीर कहे जा सकते हैं। कबीर के बाद कई सौ वर्षों तक यह धारा विलुप्त रही। इसे फिर प्रमुखता से प्रेमचंद और निराला के साहित्य में देखा जा सकता है। इसे छिन्न-भिन्न करने के अनेक प्रयत्नों के बाद भी जिन कुछ समझदार साहित्यकारों ने प्रमुखता से इसका पक्ष लिया है जनमानस ने उन्हें ही अपने सिर पर उठाया है। उन्हीं नामों में नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध,

राजेश जोशी, केदारनाथ सिंह, डॉ० शांति सुमन के महत्वपूर्ण नाम हैं। न जाने कितने प्रलोभनों को ठुकराकर, कितनी मुसीबतों को सहकर इन्होंने अपनी प्रतिबद्धता बनाए रखी होगी। सांप्रदायिक और जातिवादी ताकतों को सामने लाकर जनवाद को अनुपयोगी और बौना बनाने की कोशिशें लगातार जारी हैं।

डॉ० शांति सुमन की रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं किंतु उनकी वे रचनाएँ जन-जन के अधिक प्रिय हैं जो आमजन के अत्यधिक करीब हैं, जिन्होंने जन स्वर को तीव्रता से हवा दी है। इन रचनाओं को जनता ने अपने हृदय में बसाया है और इनके साथ-साथ उनके रचनाकार को। स्वयं रचनाकार ने नवगीत और जनगीत में अधिक अंतर नहीं बताया है। उन्होंने कहा है—"रागात्मकता के इसी विस्तार में रोमान भी छायावाद और पारंपरिक गीतों से अलग रचाव लेकर नवगीत में व्यक्त हुआ। रोमान जीवन से आसक्ति का पर्याय होता है। उसमें मानवीय संवेदनाएं भरी होती हैं। यह रोमान ही है जो मनुष्य को जीवन-संघर्ष में आगे रखता है और जीवन के प्रति विश्वास टूटने नहीं देता। नवगीत ने समकालीन सरोकार के संवेदनशील अनुभवों से जोड़कर अपनी अभिव्यक्ति के आकाश को विस्तार दिया। ऐसा नहीं है कि उसमें केवल मध्यवर्गीय जीवन की दिनचर्या के दस्तावेज ही लिखे गये। उसमें भी खेत-खलिहान की चिन्ता है। मजदूरों का स्पष्ट प्रतिबद्ध रूप में..., पर बैलों की तरह खटते हुए, कम मजदूरी पाकर भूख से परेशान लोगों, पर्व-त्योहार पर भी नये कपड़े नहीं खरीदने की लाचारी, व्यवस्था के विसंगत त्रास इन गीतों में भी हैं। इनके पास सामाजिक दायित्व तो है, राजनीतिक दबाव नहीं है। स्त्रियों, दलितों, विपन्न वर्ग की दुर्गति के चित्र नवगीत में बहुत हैं।"

इन्होंने माना है कि नवगीत में वर्ग-संघर्ष उस रूप में नहीं आया जिस रूप में जनवादी गीत में आया है।... नवगीत की ईमानदार गीतात्मक पहल में किसी प्रकार का अविश्वास किया ही नहीं जा सकता।

जनवादी गीतों की अवधारणा बताती हुई वे कहती हैं; "नक्सलबाड़ी आंदोलन और मुख्य रूप से किसान आंदोलन के जनवादी

गीत—दोनों की उपस्थिति मिलेगी। 'एक सूर्य रोटी पर' के गीत अपनी जनपक्षधरता के लिए ही जाने गये। फिर 'धूप रंगे दिन' में अधिकांशत: गीत की दोनों ही धाराएँ मिली-जुली हैं।

कहना यह है कि डॉ० शांति सुमन एक बड़ा नवगीतकार होकर ही संतुष्ट होती तो जनवादी गीतों का इतना पक्ष क्यों लेती? वे यहाँ तक कहती हैं—''लहू बहाने वाले गीतों और कविताओं में ही क्रांति नहीं होती और बिना हँसिया-हथौड़े के भी जनवादी गीत लिखे जा सकते हैं, लिखे गये हैं और श्रमजीवी संघर्षरत लोगों के वे अधिक निकट हुए हैं। जनता ने उन रचनाओं में अपने जीवन यथार्थ की ध्वनि सुनी है।" उनके इस कथन का यह अर्थ है कि उन्होंने जो भी गीत या कविताएँ लिखी हैं वे सभी जनवादी न भी हों किंतु उनकी आत्मा जनवादी है।

मूलत: उनका जनवादी होना ही वैज्ञानिक चिंतन धारा में शामिल होना है और अपनी इसी महत्ता के कारण वे जनग्राह्य हुई हैं। डॉ० शांति सुमन किस हद तक जनवादी हैं यह उनके ही शब्दों में देखना अच्छा होगा। 'एक सूर्य रोटी पर'—06 में प्रकाशित होकर आया तो उसके साथ उसकी कुछ मीठी तीखी आलोचनाएँ भी आईं। वस्तुत: समीक्षकों और आलोचकों की मान्यताओं में मेरे गीत एक पक्ष को नवगीत के रूप में 'बेला के फूलों की तरह गमकने वाले गीत' लगे तो दूसरे पक्ष को वे नितांत जनवादी लगते थे। कुछ आलोचकों ने नवगीत से जनवादी गीत के प्रति मेरे लगाव को अपने ही कोमल सशक्त बिम्ब को तोड़ देना कहा। यह उनपर एक दबाव जैसा था और इसका इन्होंने खुलकर जबाव दिया है—"यदि गीत की पक्षधरता पर कोई कमी नहीं आई है तो फिर गीतकार पर ऐसा बंधन क्यों?"

वस्तुत: यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि महीयसी महादेवी वर्मा के बाद गीतों में दूसरा बड़ा नाम डॉ० शांति सुमन हैं जिसको वे निरंतर अपनी अभिव्यक्तियों से प्रमाणित करती जा रही हैं।

■

कविकुंभ के लिए साक्षात्कार की प्रश्नावली

1. आपकी जिंदगी में कविता कैसे-कैसे आई ? आपको अपनी किस कविता से लगा कि अब कविता यात्रा ठीक से चल पड़ी है? आपके कवि के बारे में तो सभी जानते हैं, लेकिन आपके व्यक्ति के बारे में लोग बहुत कम जानते हैं। आपके गृहजनपद के बारे में, उसकी प्रकृति, संस्कृति और जिंदगी के बारे में, आपके बचपन, प्रारंभिक शिक्षा, साहित्यिक रूचि की शुरूआत आदि के बारे में जानना चाहेंगे?
2. कविता की पहचान पर बनाए गए मानदंड—क्या आप अपनी कविता रचते समय ध्यान रखती हैं, एक कविता को आप कितनी बार लिखती हैं यानी कविता में कितनी बार रद्दोबदल करती हैं,
3. अच्छी कविता, श्रेष्ठ कविता, बड़ी कविता और महान कविता जैसे पदबंधों में क्या कोई अंतर है ? जबकि ऊपर से देखने पर एक दूसरे के पर्याय ही लगते हैं।
4. युवा (गीतकार) रचनाशीलता की प्रवृत्तियाँ क्या हैं ? क्या वह अपने समय और समाज का प्रतिनिधित्व कर पा रही हैं ?
5. हाल ही में आपने कौन सी साहित्यिक कृतियां पढ़ी हैं ? अपना व्यस्त समय पढ़ने पर देने की दृष्टि से उनमें सबसे महत्वपूर्ण कृति कौन सी लगी ? कौन सी कृतियां जेहन में हैं, जिन्हें पढ़ नहीं सकी हैं, पढ़ने का बहुत मन कर रहा है, क्यों ?
6. हिंदी कविता अपनी पहचान और पहुंच को लेकर संशय में क्यों है? आज हिंदी भाषी समाज में कविता की पहचान एक हंसोड़

तुक्कड़ से क्यों की जाने लगी है ?

7. जबकि ज्यादातर स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाएँ सिर्फ साहित्यकारों के बीच होकर रह जा रही हैं, ऐसे में अच्छी कविता को संभाव्य पाठक तक पहुंचाने के लिए क्या मुख्य धारा की घटिया प्रकाशन-वितरण व्यवस्था भी जिम्मेदार नहीं है ?

8. क्या सुनकर या पढ़कर कंठस्थ हो जाना ही अच्छी कविता की पहली कसौटी होनी चाहिए ? कविता का काम मनुष्य की चेतना को विकसित करना भी है तो जटिल किंतु अच्छी कविता को पढ़ने के लिए आम हिंदी पाठक शब्दकोश देखने की जहमत क्यों नहीं उठाना चाहता ? तो क्या, सरलता का अर्थ यह होना चाहिए कि कवि जान-बूझ कर ऐसे शब्दों के प्रयोग से बचे, जो सहज-ग्रहण की प्रक्रिया को बाधित करते हैं ? क्या पाठक को संप्रेषण के लिए कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करनी चाहिए ?

9. रचना पर विचारधारा और रचनाकार के अत्यधिक प्रभाव के क्या नतीजे होते हैं ?

10. वह कविता का साहित्य हो, अथवा आलोचना का, उपेक्षा के शिकार ऐसे श्रेष्ठ कवियों और उनके महत्वपूर्ण सृजन को वक्त के अंधेरे से बाहर लाकर आम पाठकों तक पहुंचाने तक के लिए क्या किया जाए?

***कविकुम्भ से साभार**

■

कविकुंभ के लिए साक्षात्कार की प्रश्नावलियों के डॉ. शांति सुमन के उत्तर

1. जिन्दगी में कविता किसी व्यक्ति के आने की तरह नहीं आती है, वरन् वह संवेदना के रूप में जन्म से ही साथ चली आती है। इसलिये ऐसे लोगों को विशेष की पंक्ति दी जाती है। मैं जिस वातावरण में पल रही थी, उसमें कविता की अशेष संभावनाएँ भरी थीं। गरीबी, अशिक्षा एक ओर और फूल, तितली, पोखर में खिलते उजले-लाल कमल और साथ में चलती मछलियाँ, हर व्यक्ति जहाँ रास्ता अपने साथ लेकर आता-जाता था, क्योंकि कोई बना-बनाया रास्ता नहीं था।

मेरी पहली कविता जो गीत के ही शिल्प में थी, 'रश्मि' नाम की पत्रिका में छपी थी। घर-परिवार के, संबंध के लोग उसकी चर्चा करने लगे। उसकी प्रशंसा भी। तो मुझको लगा कि मैं कविता लिख सकती हूँ और इस तरह मेरी कविता-यात्रा चल पड़ी।

मेरे व्यक्ति के बारे में मैंने बहुत बार लिखा है और लोगों ने भी अपने विचार साझा किये हैं। व्यक्ति के रूप में मेरे बचपन के दिन धूप के रंग रंगे दिन लगते हैं। जीवन के इस मोड़ पर खड़ी होकर जब अपना अतीत, अपने बचपन को देखती हूँ तो वह किसी मूर्तिकार की उस अनगढ़ मूर्ति की तरह दिखता है जिसको जगह-जगह से तराशकर छोड़ दिया गया हो। सहज और अचिंतित सुन्दरता ही जिसका वैभव हो। उन दिनों के निम्न मध्यवर्गीय परिवार के बच्चों से कई अर्थों में समानता के बावजूद मेरे बचपन में कुछ वैसा था जो मुझको दूसरे बच्चों से अलग करता था। संगीत की किसी आहट और गहरे आर्त्तनाद की तरह आज

भी उसकी अनुगूँज सुनाई पड़ती है।

मिट्टी की भीत पर फूस की छानों से बने छोटे-बड़े घरों वाला मेरा गाँव तब जितना सुन्दर लगता था, आज नहीं लगता। तब एक सीधी पगडंडी भी मेरे गाँव से होकर नहीं गुजरती थी। मेड़-मेड़ या बीच खेत से ही होकर लोग जाते थे। स्टेशन या बाजार या विवाह के अवसर पर बाराती लेकर भी। तब बैलगाड़ी के सिवा आवागमन की कोई दूसरी सुविधा नहीं थी। उन्हीं दिनों गाँव में 'लीक' बनना शुरू हुआ था। छोटे घरों-झोपड़ियों से उठते धुओं के गुब्बारे, सुबह होते ही चिड़ियों की चह-चह के साथ घरों से निकल आते गरीब बच्चों की चहल-पहल के बीच हल-बैल लेकर निकलते छोटे-मझोले किसान के हलवाहे, जन-बनिहार, कुओं से जल खींचती छोटी लड़कियाँ और नयी बहुएँ, लोगों में काम करने के उत्साह और चिन्ता भी और सबके ऊपर फसलों की हरी सुगंधों में डूबा खेत, जल-चाँचर-अपने दलान या खिड़की से उन सारे परिदृश्यों को देखती मैं मन ही मन विमुग्ध होती रहती। किसी महाकवि के उदास मन से लिखे वृत्तान्त की तरह मेरा गाँव प्रसन्न नहीं दीखता था। खेत उपजता था, पर उतना नहीं जितने से अमीर-गरीब सबके पेट भर सके। लोग काम करना चाहते, पर काम नहीं थे। गरीबी, अशिक्षा और अंधविश्वास की तिकठी पर टंगा मेरा गांव किसी बड़े बदलाव की प्रतीक्षा करता था।

मेरे दादा स्वर्गीय बलदेव लाल दास एक गंभीर धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। मेरे पिता श्री भवनन्दन लाल दास जिनको लोग कुँवर जी कहते रहे और जो अब श्री कुँवर बाबा के नाम से सुख्यात हैं, के अतिरिक्त एक पुत्री श्रीमती फूल देवी के जन्म के बाद अल्पायु में ही दिवंगत हो गये। इसलिए मेरे पिता का लालन-पालन और शिक्षा कार्य सभी उनके चाचा स्वर्गीय प्रीतमलाल दास की छत्र-छाया में संपन्न हुआ। उनको ही हमलोग दादा के रूप में जानते रहे और भरपूर ममत्व पाते रहे। उन्होंने अपने अंत समय में मेरे पिता को ही घर का स्वामित्व दिया और मेरे बचपन के शुरू के दिनों में एक अवलम्ब भी।

मेरे जन्म के पूर्व मेरी माँ ने एक पुत्र को जन्म दिया। तब मेरे पिता 'डिफेन्स' में नौकरी करते थे। वैसे भी मेरा घर गाँव में 'मालिक' का घर था और अब तो पैसे की भी कोई कमी नहीं थी। दादाजी ने उस शिशु के जन्म पर उत्सव मनाया। घर से निकलकर खुशियाँ पूरे गाँव तक गईं, पर दुर्भाग्यवश वह शिशु जीवित नहीं रहा। उसके बाद एक लम्बा सन्नाटा मेरे परिवार में फैल गया। खुशियों की गवाही देते क्षण दुखों से भर गये। दो वर्ष बीत जाने के बाद जब मेरी माँ को दूसरी संतान नहीं हुई तो मेरी दादी ने वे सब उपाय करने शुरू कर दिये जो उन दिनों गाँव में सन्तान की प्राप्ति के लिए प्रचलित थे। मेरी दादी जिनका दो बच्चों के बाद ही सुहाग का सुख खो गया था, एक अत्यंत सन्त स्वभाव की धर्मप्राण स्त्री थीं। अपने गाँव के मंदिर के अतिरिक्त निकट के गाँवों के मंदिरों में जा-जाकर उन्होंने पूजा-अर्चना की, पीर के मजारों पर भी मन्नत मांगने गईं। उन्होंने घर की कुलदेवी भद्रकाली और बाहर के काली मंदिरों में बलि देने को भी कबूला। यहाँ तक कि उन्होंने गंगाजी में धान की 'जूटी' और अन्य पूजन सामग्रियों को समर्पित करने का भी संकल्प लिया। इन सारी घटनाओं और स्थितियों को मैंने अपने जीवन में घटित होते हुए देखा। मेरी दादी ने न जाने कितने तीर्थ-व्रत किये। मैंने अपनी छोटी आयु से ही लोगों के मुँह से उनकी बेचैनियों की कथाएँ सुनीं।

इतने देवी-देवताओं को मनाने के बाद मेरा जन्म हुआ था। इसलिए घर में मुझको बहुत लाड़-प्यार मिला। मेरे जरा सा रोने पर ही दादी घर को सिर पर उठा लेती थीं। फुआ ने मुझको बताया कि जन्म के बाद कितने ही दिनों तक उन्होंने मुझको गोद से नीचे नहीं उतारा। उनको लगता था कि नीचे उतार देने पर पहले शिशु की तरह यह भी नहीं बचेगी। मेरे पिता ने अपनी डायरी में लिखा था—'माई वाइफ गेभ बर्थ टू ए ब्यूटीफूल डौटर।' उन्होंने प्रकट में मुझको गोद में लेकर दुलार नहीं किया, परन्तु अपनी डायरी में मेरे लिए अपने मन का प्यार लिख दिया था। बड़े होने पर मैंने डायरी का वह पन्ना पढ़ा था।

मेरे जन्म के बाद मेरी माँ को एक-एक कर तीन पुत्रों को जन्म देने का सौभाग्य मिला। इससे पूरे घर में लाड़-प्यार के साथ मेरे लिए मान-सम्मान भी बढ़ गया था। माना जाता था कि मेरा आना इतना शुभ हुआ कि माँ को तीन बेटे प्राप्त हुए। दादी मुझको अपने घर की लक्ष्मी मानती थी। डेढ़-दो साल के अन्तरों पर ही माँ को अन्य बच्चे हुए थे। ऐसा होता था कि किसी एक क्षण में अपने-अपने कारणों से बच्चे रोते थे तो दादी सबसे पहले मुझको उठाकर गले से लगाती थी। मुझको चुप कराती हुई वह कभी-कभी आंगन से दालान पर भी चली जाती थी और मेरे भाई उसी तरह रोते रह जाते थे। फिर माँ काम समाप्त कर या बीच में छोड़कर ही बच्चों को चुप कराती थी। मेरी दादी खुशियों से भर जाती थी कि मैं मान गई हूँ या चुप हो गई हूँ।

उन दिनों समाज में बेटियों की अपेक्षा बेटों का मान अधिक था। पर मेरे घर में यह अद्‌भुत बात थी कि मेरी जगह सबसे ऊपर थी। मेने मन के विरूद्ध कोई मुझसे कुछ भी नहीं करा सकता था। मैं चाहे जिसको मारूँ पर कोई मुझको नहीं मारता था। दादी ने घर में मेरे लिए अभयारण्य बना रखा था। मेरी किसी शिकायत पर वह दूसरे बच्चों को बहुत डाँट देती थी। इस तरह मेरे भीतर स्वाभिमान के साथ जिद भी शामिल हो गई थी। एक बार माँ ने कहा था—'चल बेरहट खा ले।' उन्होंने मुझको भुने हुए चूड़े और हरे मटर के दाने दिये। मैंने चूड़ा और मटर से भरी कटोरी को पलक झपकते हुए आँगन में फेंक दिया और जोर-जोर से रोने लगी। माँ ने तो 'बेरहट' खाने के लिए कहा था—फिर चूड़ा और मटर क्यों दिया। मैं घंटा भर रोती रही। सारे बच्चे मेरे लिए रुआँसे होते रहे। फिर दादी ने मुझको समझाया कि अबेर के जलपान को मैथिली में 'बेरहट' कहते हैं। जो खाने को दिया जाए वही बेरहट है। मुझको आज भी लगता है कि मैं उस समय उस उत्तर से सहमत नहीं हुई थी।

हमारा घर निम्न मध्यवर्गीय किसान परिवार का घर था। काफी अन्न उपजता था। मैं देखती थी कि तेल-नमक आदि घरेलू चीजें लोग

अनाज देकर ही खरीदते थे और आम के मौसम में आम देकर। एक बार कान का इयरिंग मैंने 'बकोलिया' से एक आम देकर लिया था। काँच का नहीं था वह, पता नहीं शायद प्लास्टिक का था।

सरस्वती पूजा के लिए मुझको अपने एक भाई के साथ 'भट्ठा' छुआया गया। मास्टर जी को पीली धोती और दक्षिणा दी गई थी। उन्होंने उसके बाद ओ ना मा सी लिखकर दिया और अभ्यास करने के लिए कहा था। फिर तो बाँस के फट्ठे से बनी बेंच वाले अपने गाँव के स्कूल में ही मैंने पढ़ने जाना शुरू किया। मास्टर जी बहुत गुस्सा वाले थे, पर मुझको डाँटने की हिम्मत उनको कभी नहीं हुई। बीच में वे किसी बच्चा को वर्ग से निकलने नहीं देते थे, पर मैं जब चाहूँ, निकल जाती थी। मैंने घर आकर कह दिया था कि यह मास्टर जब तक रहेगा, मैं स्कूल नहीं जाऊँगी। और मास्टर बदल गये थे।

गाँव में तब पहली बार घर में 'सनलाइट' साबुन आया था। बाबूजी ने मंगाया था। मैंने जिज्ञासा में चुपचाप उसको पानी भरी बाल्टी में डाल दिया। कुछ घंटो के बाद वह आधा से अधिक गल गया। बाबूजी ने जब पूछा कि साबुन कहाँ है तो मेरे भीतर का भय जागा। मैं चुपचाप निर्दोष की मुद्रा में दादी के साथ उनके आगे-पीछे करने लगी। सबने कहा—किसी बच्चा का काम है और फिर सारे बच्चों को कसकर डाँट पड़ी, कितने को थप्पड़ भी जड़ दिए गए। रात में दादी ने पूछा—'बाबू तू फेकले रही'—मैं कसकर उनकी देह से लग गई।

मैं बच्चों की लीडर थी। कोई मेरा बस्ता ढोता था, कोई मेरी नयी कॉपी को माथे पर लेकर चलता था। कीचड़ में चलने पर पाँव को धोने के लिए कोई दौड़कर पानी लाता था। इसके बदले में मैं उनको रक्षात्मक सहयोग देती थी। कोई 'लिखना' (हैण्डराइटिंग) लिखकर नहीं ले जाता था और मास्टर जी की छड़ी उठ जाती तो मैं बोल देती कि इसकी कॉपी मेरे पास रह गई थी। मैं पढ़ने में बहुत तेज थी। मगर मास्टर जी की क्रूरता से सदैव दूर रहना चाहती थी। शाम को मेरे बाबूजी के फुफेरे भाई जो हमारे यहाँ ही रहते थे, हमलोगों को पढ़ाते थे। उनका भी

हाथ छूटा हुआ था। कोई बात हुई नहीं कि गाल पर थप्पड़ लगा देते थे। दादी जब पाँव दबाने के लिए उनको किसी बच्चे को भेजने के लिए कहती थी तो मैं उस काम को करने के बहाने वहाँ से भाग आती थी। वैसे दादी नहीं चाहती थी कि मैं पैर दबाऊँ। क्योंकि उनकी दृष्टि में मैं कोमल थी और मुझको वह काम करने नहीं आता था।

जमालपुर से मेरे पिता की बदली इलाहाबाद हो गयी। दादी ने मुझको माँ-बाबूजी के साथ नहीं जाने दिया। मैं गाँव में उनके साथ रही। उन दिनों मेरा परिवार संयुक्त था। मेरे गाँव के गरीब लोग मेरे घर से बहुत सहयोग पाते थे। शायद इसलिए मेरे घर को वे बड़ी हवेली कहते थे।

बहुत छोटी उम्र में ही मैंने संयुक्त परिवार के गुण-दोषों को देखना और समझना शुरू कर दिया था। धीरे-धीरे पहले के प्रेम और सौमनस्य का टूटना-बिखरना शुरू हो गया था। मेरे दादा के मुंशी या उनके काम-काज में सहयोग करने वाले 'दीवानजी' के देहान्त के बाद उनकी पत्नी अपने दो बेटों के साथ हमारे यहाँ ही रहती थी। उस पूरे परिवार का जलपान-भोजन बनाने से लेकर सारे टहल-टिकोरे वही करती थी। अपनी उस छोटी उम्र में ही मैंने उनके दुख और शोषण को महसूस किया था। वह सदैव सूर्यास्त के समय नहाकर सूर्य को जल देती थी। मैंने अपने अबोधपन में उनसे एक दिन पूछा कि वे शाम के समय किसको पानी देती है। उन्होंने बताया कि उनके 'करम' में यही लिखा है कि वे डूबते हुए सूर्य को ही पानी दें तो वे क्या करें। मैंने उनकी आँखों से बहते हुए आँसुओं को भी देखा। मैं समझ नहीं पाई कि मुझसे क्या गलती हुई। आज उसका पूरा संदर्भ और अर्थ जान गई हूँ।

मेरे बाबूजी ने अपनी हैसियत बढ़ाने के लिए गाँव और आसपास की बिकती हुई जमीन को खरीदना शुरू किया। उस क्रम में उन्होंने मेरी माँ के सारे गहने भी ले लिये। घर में किसी से कुछ नहीं लिया। मेरी माँ बहुत कम बोलती थी। उसका बाबूजी से कभी विरोध नहीं हुआ। एक बार तो उन्होंने मेरे पाँव से रूनझुन बोलते चांदी के कड़े भी उतार लिए। बीघा भर के अपने आंगन में मैं लोट-लोटकर रोई। दादी ने मुझको

कितना मनाया। माँ ने मुझको कुछ नहीं कहा। मैं उसका दुख तब नहीं जान पाई। आज बेहतर जान रही हूँ। दादी ने इतना कहा कि पत्नी-बच्ची को सूनाकर जमीन खरीद रहे हो। क्या होगा उसका ? घर का जब बँटवारा हुआ तो उनमें से कोई जमीन बाबूजी को नहीं मिली। मेरे मन पर आज भी उस और उस जैसी अनेक घटनाओं के निशान बाकी हैं।

बच्चा काका ने मेरी जन्मतिथि शरत पूर्णिमा 1942 लिखा दी थी। मेरी फुआ ने बाद में मुझको बताया कि मेरा जन्म अनन्त चतुर्दशी को हुआ था। घर में अनन्त भगवान की पूजा हुई थी। सबकी बाँह पर डोरे बँधे थे। वह 1944 का सितम्बर मास रहा होगा। तब देश में आजादी के संघर्ष चल रहे थे। काफी उथल-पुथल थी। हुआ यह कि शिक्षा और आजीविका में मेरी जन्मतिथि सितम्बर 1944 रही और रचना-कर्म में वह शरत पूर्णिमा 1942 हो गई। यह बचपन की भावुकता है जिससे मैं अलग नहीं हो सकी। बचपन कभी समाप्त नहीं होता। आज जो भी हूँ उसमें मेरे बचपन का अनुदान ही अधिक है। सामाजिक सरोकार की संवेदनायें मुझमें उन्हीं दिनों जगीं। मैं जितनी सुविधाओं में पली, मेरा मन असुविधाओं का उतना ही साक्षी बना।

2. जिन दिनों मैंने गीत के लेखन से अपना जुड़ाव अनुभव किया था, उन नए अनुभवों के बीच भी मैंने क्या ऐसा नहीं किया। कोई कविता की पहचान पर बनाए गये मानदंडों को ध्यान में रखकर कविता क्या लिखेगा! वह गीत-कविता से इतर कोई दूसरी विधा होगी। मगर मैं इतनी निष्करूण नहीं हूँ कि गीत लिखती हुई दूसरी विधा की मर्यादा को नहीं जानूँ। कोई भी किसी भी विधा का सहज-स्वत:स्फूर्त्त रचनाकार इस कृत्रिम शिल्प का पक्ष नहीं लेगा। हाँ, सायास लिखने वाले ऐसा कर सकते हैं। फलत: निरर्थक या दूसरी निम्न कोटि की कवितायें लिखते होंगे।

एक कविता (गीत) को मैं एक बार ही में लिखती हूँ। मैं कविता में कोई रद्दोबदल नहीं करती। मुझको तो यह हास्यास्पद लगता है। कविता है या परीक्षा का प्रश्नोत्तर ? किसी भी श्रेष्ठ रचनाकार के लिये यह अकल्पनीय है। मैंने स्वयं को श्रेष्ठ रचनाकार नहीं कहा।

आपने श्रेष्ठ रचनाकारों की बात की है।

क्या यह संभव नहीं है कि एक ही कविता को कई बार लिखने में पूर्व की मन:स्थिति, संवेदना, आत्मीय परिकल्पनाओं के शिल्प-नहीं बदल जाते होंगे ? मेरे निकट कविता लिखने की यह अत्यंत कृत्रिम प्रक्रिया है।

3. ये जितने नाम अपने दिये—वे सारे पद-बंध समीक्षकों और आलोचकों के बुने हुए इन्द्रजाल हैं। एक श्रेष्ठ कविता ही सारे पदबंधों को समाहित कर लेती है। यदि वह श्रेष्ठ कविता है तो वह अच्छी भी है, बड़ी और महान भी। पर्याय होना और वही होना एक बात नहीं है। अच्छी तो समझ में आती है, बड़ी से क्या प्रयोजन, क्या अर्थ है आपका! सच पूछिये तो "महान" ने जितनी अपनी गरिमा खोई है, अब उसका वह अर्थ भी नहीं रहा। किसी व्यस्त शहर की सड़कों पर बने गड्ढे में किसी ने लिखकर टाँग दिया—'मेरा भारत महान'। अब उसके अर्थ और अभिप्राय पानी पर तेल की तरह फैलने लगे थे।

कविता जब प्रतिमान रचती है तो श्रेष्ठ होती है। उसमें केवल समीक्षकों, आलोचकों या विचारकों के मंतव्य ही नहीं होते। ऐसी कविताओं के लिये जीभ कागज और आँखें कलम बन जाती हैं।

तुलसी की 'विनय पत्रिका', 'रामचरित मानस' का उत्तरकांड, जायसी का नागमती प्रसंग, कबीर की 'साखी', निराला की 'सरोज स्मृति', महादेवी की 'यामा' नागार्जुन की कविता—'कालिदास सच-सच बतलाना', 'खिचड़ी विप्लव', रमेश रंजक के 'मिट्टी बोलती है' के गीत आदि श्रेष्ठ कविता के उदाहरण हैं।

4. युवा रचनाशीलता वैयक्तिक नहीं है, वह पहली ही दृष्टि में सामाजिक है। युवा रचनाकार पूरी पृथ्वी के लिये लिखते हैं। क्योंकि पूरी पृथ्वी उनके समक्ष अपने यथार्थ के साथ उपस्थित है।

मैं जिन सार्थक युवा रचनाकारों की बात करती हूँ, वे अपने समय और समाज को दृष्टि-पथ में रखकर लिख रहे हैं। लोग युवा रचनाकार, नयी पीढ़ी के रचनाकारों के लिये संदेश देने की बात करते हैं। मैंने इसका विरोध किया है और लिखकर कहा है कि नयी पीढ़ी के

लिये संदेश देने का काम अब स्थगित होना चाहिये। अब जो युवा रचनाकार आ रहे हैं वे इतने सजग, सचेत और सचिन्त भी हैं कि अपना निर्णय स्वयं ले रहे हैं। उनको पता है कि समय-साल ने उनको कितना चौकन्ना बना दिया है। युवा रचनाकार की सोच में जो ऊर्जा और सकारात्मकता है, वह मुझको अन्यत्र दिखाई नहीं देती।

अब युवा रचनाकारों का पहला ही गीत-संग्रह, कविता-संग्रह या कथा-संग्रह भी इतना मँजा हुआ होता है कि लगता ही नहीं, वह उनका पहला संग्रह है। संघर्षों ने उनको इतना माँज दिया है कि उनकी रचनायें चकित करती हैं। वे इतनी अनुभव-समृद्ध होती हैं कि कहना पड़ता है कि समय ने इनको कितना बड़ा और समझदार बना दिया है। मेरी दृष्टि में रचनाकारों की युवा पीढ़ी अत्यंत समर्थ और ऊर्जावान है। इन्होंने समय की खुली किताबों को पढ़ा और जिया है। मैं उनको उज्जवल स्नेह देना चाहती हूँ। बाजारवाद ने देशों की भौगोलिक सीमा को तोड़ दिया है और इसको पूरी पृथ्वी को तय करने की सुविधा दे दी है।

5. आप जब पूछते हैं कि हाल में मैंने कौन सी साहित्यिक कृतियाँ पढ़ीं तो पहले तो मुझको हाल का अर्थ मालूम नहीं हुआ। हाल को क्या समझूँ! एक सप्ताह, एक पखवाड़ा, महीना या दो-चार महीने—क्या? फिर भी मैं बता दूँ कि मैंने इधर दो महीने से दो-तीन किताबें अपने मन की और अन्य किताबों को कर्त्तव्य के निर्वाह के लिये पढ़ा। मित्र लोग—उनमें वरिष्ठ-कनिष्ठ सभी होते हैं—विशेषकर अपने गीत-संग्रह समीक्षार्थ भेज देते हैं तो उनको पढ़ना जरूरी होता है। पढ़कर ही तो समझूँगी और फिर लिखूँगी। परन्तु मैंने तीन पुस्तकें अपने मन, अपनी रूचि की पढ़ी। महाश्वेताजी मेरी अतिप्रिय रचनाकार रही हैं। कुछ अपने व्यावहारिक कार्य-शिल्प के कारण और अधिक अपने लेखन के कारण।

जिन दिनों कालेज में पढ़ाती थी, उनके किसी एक वर्ष में हिन्दी प्रतिष्ठा में 'जंगल के दावेदार' मुझको पढ़ाने को मिला। मैं चकित तो हुई ही, खुशी से मेरा मन भर आया। उसको कोई दूसरी प्रोफेसर पढ़ाती थीं,

छात्राएँ संतुष्ट नहीं थीं तो वह मेरे हिस्से में आया। मैंने उस उपन्यास को पहले भी कई बार पढ़ा था और हर बार लगा था कि एक बार और पढ़ूँगी। और अब वह पुस्तक मेरे सामने थी। उसमें आदिवासियों की केवल दिनचर्या ही लिखकर रह जातीं तो उसकी पठनीयता और सम्प्रेषण में कोई कमी नहीं आती। उनका कथा-शिल्प अद्‌भुत है। डिटेल्स कभी-कभी उबाऊ भी हो जाते हैं, पर महाश्वेताजी के डिटेल्स इतने विलक्षण हैं कि उनको ही बार-बार पढ़ने का मन करता है। आदिवासियों का जीवन-यथार्थ, उनकी करूणा-प्लावित आत्मीय दिनचर्या, संघर्ष, प्रेम और सान्निध्य पढ़कर मन पवित्र हो जाता है। उसको मैंने पढ़-पढ़कर पढ़ा।

इसी में मैंने 'विश्व बाजार का ऊँट' जयनन्दन की कहानी—'छोटा किसान' को फिर पढ़ा। उसकी कई पंक्तियाँ मन में इस तरह बैठ गई थी कि दूसरी बातें उसमें जगह बना ही नहीं सकती थीं। दाहू महतो के बेटे समय-साल देखकर सजग हो गये हैं। अपनी बदहाली को बदलना चाहते हैं। कहते हैं - ''अब हम दूसरों की जमीन में अपनी देह गलाकर एक ही जगह गोल-गोल नहीं घूमना चाहते। वही सूखा, वही मारा, वही करजा, वही भुखमरी।''

कविता में मैंने त्रिलोचन की 'धरती' पढ़ी। उसकी एक कविता एक जगह उद्धृत करने में भूल गई थी। उसके बहाने पूरी 'धरती' पढ़ ली। इस कविता का बड़ा क्रेज था उन दिनों—"चम्पा काले-काले अच्छर नही चीन्हती/मैं जब पढ़ने लगता हूँ वह आ जाती है/खड़ी-खड़ी चुपचाप सुना करती है/उसे बड़ा अचरज होता है...।"

उनकी एक कविता और भी मुझको बहुत प्रिय है। 'ताप के ताये हुए दिन' से—"जबतक यह पृथ्वी रसवती है/और/ जबतक सूर्य की प्रदक्षिणा में लग्न है/तबतक आकाश में/उमड़ते रहेंगे बादल मैडल बाँधकर।" जय चक्रवर्ती का 'थोड़ा लिखा समझना ज्यादा' भी पढ़ा। यह समीक्षार्थ आया है। इसकी शुरू की पंक्तियों ने ही बाँध लिया—"मौत से मत डराओ मुझे,/गीत हूँ मैं/मरूँगा नहीं।"

समीक्षार्थ जो गीत-संग्रह आये, उनमें अभी इनको पढ़ा—

ओम प्रकाश सिंह का 'अंधेरों को तोड़ दो'

भोला पंडित प्रणयी का 'बाँधो न बहती खुशबू को'

धनंजय सिंह का गीत संग्रह 'दिन क्यों बीत गये'

"गायेंगे हर गीत/रहा जो/अब तक अनगाया"

मधु प्रसाद की पुस्तक 'एक शब्द-यात्रा—बहुरंगी' पढ़ी। इसमें मधुजी ने कई रचनाकारों को अपनी दृष्टि से उनकी रचनाओं का, शैली का पूरा बिम्ब प्रस्तुत किया है। उसमें मुझपर भी एक आलेख है। पढ़कर अच्छा लगा। शीर्षक है 'नवगीत के इन्द्रधनुष पर : डॉ० शान्ति सुमन'।

मगर जिसको मैंने पढ़कर भी कई बार पढ़ा। फिर-फिर मिलता रहे वह कविता-संग्रह तो फिर-फिर पढ़ती रहूँगी। संग्रह है—'पानी उदास है'। अनेक दिन ऐसे गुजरे हैं, जब कई रंगों की उदासियाँ मुझको अच्छी लगती रही हैं। जैसे—उदास हँसी, उदास संध्या, उदास दोपहर, उदास वर्षा आदि...। आत्मीयता के रंग में अपनी संवेदना की कलम से लिखी उस संग्रह की एक-एक कविता जैसे मन से लिपट जाती है। हटाओ तो नहीं हटती है। अखिलेश्वर पांडेय क्या चीज हैं—पहले पता नहीं चलता था, अब जो चलता है। मैंने युवा रचनाकार के बारे में जो लिखा है, उसका सबसे बड़ा निदर्शन अखिलेश्वर पांडेय ही हैं।

6. इस विचार से मुझको खुशी नहीं हुई। मैं इससे सहमति भी नहीं रखती। मगर आपको ऐसा क्यों लगा कि हिन्दी कविता अपनी पहचान और पहुँच को लेकर संशय में है। संशय में कोई क्यों रहेगा जब उसकी पहचान ही भारतेन्दु युग से लेकर पूरे पूर्वोत्तर स्वातंत्र्य समय की कवितायें केवल भारतीय और आंतरिक संसार को ही नहीं छूती, पूरी पृथ्वी का हृदय उसमें धड़कता है। इन कविताओं के कारण ही देश-विदेश ही नहीं, दूसरी भाषाओं में भी हिन्दी कविता ने अपना प्रभाव बनाया है। हमारी इन कविताओं के कारण ही पूरी पृथ्वी पर हमारे साहित्यिक-सांस्कृतिक...; उसकी उदात्त सम्प्रेषणीयता और वस्तु शिल्प का इतिहास रचा है। विदेशों में विशेषकर अपनी भाषायी नैतिकता में जो लोग जीते हैं, उनकी पूरी कौम हिन्दी कविता के समक्ष विनत है। अपनी कविताओं के कारण ही हम आक्षितिज गौरव का इन्द्रधनुष टाँगकर चलते हैं। लोग हमारा भूगोल भूल जाएँ, पर हमारी कविता हमारी

संस्कृति, हमारी मिट्टी, धूप-पानी-हवा को भूलने नहीं देगी।

हिन्दी कविता ने इतना इतिहास रचा है कि केवल कविता पढ़ने के लिये लोग हिन्दी सीखते हैं। हिन्दी कविता में इतना क्रेज है कि खेल के मैदान में भी विदेशी खिलाड़ी हिन्दी सीखते हैं और अपना-कच्चा पर सही उच्चारण के लिये प्रयास करते हुए अत्यंत मासूम लगते हैं। हिन्दी कविता मंत्र की तरह उतरती है। दो देशों को जोड़ने वाले समुद्र में, उसकी लहरें, लहरों पर बनते सूर्य-बिम्ब में भी हिन्दी का आत्मीय संस्पर्श होता है जो उसपर से गुजरनेवाले हिन्दुस्तान के लोगों की आँखों से बनता है। उसमें कई छन्द बजते होते हैं जो विदेश से लौटने वाले यात्रियों के मन की खुशी से गुनगुनाहट के रूप में होते हैं।

हिन्दी कविता की पहुँच कहाँ से कहाँ तक हो गई है—वह तो हिन्दी भाषा से पूछने की जरूरत है। हिन्दी भाषा की पहुँच जहाँ तक है, हिन्दी कविता की पहुँच वहाँ तक है। हिन्दी कविता ने दुनिया के मजदूरों को आपस में जोड़ दिया है। संघर्षशील श्रमरत जनता इस कविता की प्रेरणा से संजीवित है।

आज हिन्दी भाषी समाज में कविता की पहचान एक हँसोड़ तुक्कड़ से की जाने लगी है—इसके लिये कविता नहीं, आज की सामाजिक व्यवस्था जिम्मेदार है। बाजारवाद के इस उपभोक्तावादी दौर में हर चीज साधारणीकृत होकर आ रही है। चीजों के मूल्य-मान घटे हैं और उनका स्तर भी काफी नीचा हो गया है। कपड़ा के बाजार में भी फॉर्मल की बिक्री ज्यादा हो गई है। वाणिज्यिक व्यवस्था लोगों को बहुत सतह पर उतार चुकी है। अब लोग कविता जैसी चीज में भी कम समय में बहुत अधिक फायदे लेना चाहते हैं। दिन भर काम-काज में बेचैन-व्यस्त रहनेवाले लोग कविता को नवरतन तेल की तरह इस्तेमाल करना चाहते हैं। कोई सार्थक गीत या गंभीर कविता उनको आश्वस्ति नहीं देती। वे अपना तनाव कम करने के लिये कविता का इस्तेमाल करते हैं। वह सामंती व्यवस्था दूसरी थी जिसमें लोग कविता को धराऊ रेशमी साड़ी की तरह व्यवहार में लाते थे। अब कविता तक इतनी साधारणीकृत हो गई है कि वह मन की किसी शांत छाँह में नहीं रहकर धरती की भीड़भरी

मिट्टी पर उतरना चाहती है। वह आम लोगों के नाम पर इतनी मामूली बन जाना चाहती है कि जनता को सारे पुराने मूल्यों के साँकल खोलकर खुली हवा का संस्पर्श देना चाहती है। वाणिज्यिक तनाव इससे ही कम होता है। जब तुक मिलाना ही हँसी का स्रोत हो जाए तो कविता के स्वीकृत शिल्प की जरूरत नहीं समझी जाती। इतना समय नहीं है कि कविता का अर्थ खोजने में व्यस्त रहा जाए। तुरत का तुरत फलागम चाहिए। इसलिये कविता अब इन्हीं तुक्कड़ रचनाकारों के हाथ में आ गई है। गंभीर रचनाकार अब मंच का ही परित्याग कर रहे हैं। जीने के लिए हँसना जरूरी है तो कविता को ही माध्यम बना लिया गया। वह हिन्दी भाषी समाज में कविता की सही पहचान नहीं है। परिस्थितियों के बदलते ही कविता फिर अपने पुराने मान-मूल्यों पर लौटेगी।

ये जो अन्तर्राष्ट्रीय विवाह होते हैं, उनके जीवन की अंतरंगता में सबसे पहले गीत-संगीत-प्रकारान्तर से कविता ही शामिल होती है। भाषायी बंधनों के निरस्त होते ही कविता उनकी संवेदनाओं का अनमोल हिस्सा बन जाती है। इस प्रकार कविता उनके जीवन की लय बुनती है। इस बदलते समाज में चीजों को उसकी मौलिक पहचान से चाहे जितना नीचे गिरा दिया जाए, पर समय के बदलते ही चीजें फिर अपनी जगह से लग जाती हैं। तब ये हँसोड़-तुक्कड़ भी किनारे लग जायेंगे। कविता के सुननेवाले भी केवल वही नहीं रह जायेंगे। हमारी संवेदना, आत्मीयता और कविता की श्रेष्ठता को समझने वाले लोग अगली पंक्ति में बैठना शुरू करेंगे और हास्य के नाम पर हास्यास्पद होती हुई हँसने की शैली, कविता को सुनने-समझने की शैली भी शालीन होगी। मंच का योगदान कविता को जनता तक पहुँचाने में उल्लेखनीय रहा है। उस समय मंच की कविता साहित्य में भी आ रही थी। परिष्कृत रूचि की गरिमा का तब मंच ही परिचायक था। आज तन्त्र ने जन को कविताभास से परिचय कराने की जिद कर रखी है। देखिए, प्रतीक्षा कीजिये—कब तक!

7. इस प्रश्न का उत्तर बाजारवाद के उपयोगितावादी संक्रमण में ढूँढ़ना होगा। क्योंकि पाठकों की रूचि का स्तर नीचे आ गया है। बाजार के फॉर्मल कपड़े की तरह वह दिन-दिन सरलीकरण से ग्रस्त हो रहा है।

सुरूचि का ग्राफ इतना घट गया है कि वह नितान्त चकित करता है। क्यों हँसते हैं ये यह तो पता है, पर कहाँ हँसना चाहिये–यही पता नहीं है। उसी तरह पाठक क्या पढ़ें, क्या पढ़ना चाहिये–यही उनकी स्मृति में सही नहीं रह गया है। लोग गंभीर चीजें पढ़ना नहीं चाहते। उनकी समझदारी और रसग्राहिता इतनी कम हो गयी है कि वे पठनीय–अपठनीय साहित्य में फर्क करना ही भूल गये हैं। कविता की मर्यादा को भी वे अपनी दूकानदारी में भूल गये हैं। इस वाणिज्यिक सदी में सबकुछ पैसे के पीछे चल रहा है और पैसा साहित्य–साहित्य की रूचि, पठनीयता आदि सबको खरीद रहा है और अपनी घटिया मुहर सबपर लगाते चल रहा है।

इसीलिये ऐसा है कि स्तरीय साहित्यिक पत्रिका सिर्फ साहित्यकारों के बीच होकर रह जा रही है। जब प्रकाशन में इतने पैसे लग रहे हों और पाठकों का उस सीमा तक सहयोग नहीं हो अर्थात् साहित्यिक पत्रिकाओं को पढ़ने के लिये पाठकों का अभाव हो तो उसकी फलश्रुति ऐसी ही होगी। मुख्य धारा की प्रकाशन–वितरण व्यवस्था तब जिम्मेदार होगी जब पाठकों की मांग हो और पत्रिकायें उपलब्ध नहीं हो रही हों। आखिर पहले भी पत्रिकायें छपती थीं। पाठकों को उनके लिये इन्तजार होता था। वे दिन गिनते थे कि पत्रिकायें कब आ रही हैं। अब ऐसे बेचैन और इन्तजार करनेवाले पाठक नहीं हैं। प्रकाशन–वितरण का मन भी छोटा हो जाता है।

मगर इससे उदास होने की जरूरत नहीं है। दिन तो बदलते रहते हैं। दिन को बाजार बनाता–बिगाड़ता और बदलता रहता है। पहले के पूँजीपति, सामंत भी सघन साहित्यिक रूचि के होते थे। तब बाजार नहीं था। इसलिये उनपर बाहरी दबाव नहीं था।

पहले के सामंतों की काव्यात्मक रूचि के प्रमाण पूरे रीतियुग के पृष्ठों पर उपस्थित हैं। आज के सामंत और पूंजीशाह की रूचि उतनी परिष्कृत नहीं है और मंच की हँसी में कविता के प्रति उनकी ओछी और फूहड़ प्रवृत्ति उजागर होती रहती है। पहले अपने दरबार में रहनेवाले अधीनस्थ कवि को वे सब तरह की सुविधायें देते थे। उनके साहित्य की सुरक्षा करते थे। अब तो लिखो–फेको कलम की तरह कविता भी

तात्कालिक शब्द बन गई है। उसकी किसी गरिमा से उनका संबंध नहीं है। फिर प्रकाशन–वितरण व्यवस्था में जहाँ उनका सहयोग होना चाहिये, नहीं होता। वे समर्थ हैं, पर अपनी दृष्टि से विवश हैं। कुल मिलाकर अच्छी कविता को संभाव्य पाठक तक पहुँचाने की अपनी संभावनाओं के लिये मुख्य धारा की घटिया प्रकाशन–वितरण–व्यवस्था भी जिम्मेदार है। व्यवस्था सब जगह टूटी है तो यहाँ भी वैसी ही है।

8. किसने कहा ऐसा कि सुनकर या पढ़कर कंठस्थ हो जाना ही अच्छी कविता की कसौटी होगी। अवश्य ही कविता का काम मनुष्य की चेतना को विकसित करना भी है। आज पैसा कमाने के लिये, रोजगार पाने के लिये या रोजगार को बचाने के लिये लोग कड़ा से कड़ा श्रम करते हैं, पर अच्छी कविता पढ़ने के लिये आज हिन्दी पाठक शब्दकोश देखने का श्रम नहीं करता। उनको इस श्रम को करने में इसलिये रूचि नहीं है कि उससे उनको कोई वित्तीय लाभ नहीं है। आज पैसा चाहिये, अच्छी कविता का पढ़ना बाद में।

जो कवि ऐसा करते हैं कि अपनी कविता में सरलता के लिये जान–बूझकर सरल शब्दों का प्रयोग करते हैं और स्वाभाविक रूप से आनेवाले गंभीर शब्दों को टाल जाते हैं, वह कविता के साथ अन्याय है। वैसी कविता सायास कविता ही होगी। निरायास कविता में जो सहज, सुगम प्रवाह होता है, उसकी वहाँ नितान्त कमी होती है। पाठक को संप्रेषण के लिये बहुत कुछ करना चाहिये। उनको अपनी शब्द–शक्ति बढ़ानी चाहिये, शब्दों का भंडार बढ़ाना चाहिये। शब्द–गठन के अतिरिक्त बिम्ब–प्रतीक–अलंकार का भी ज्ञान होना चाहिये। यह सब तो सीखने, पढ़ने और श्रम करने से ही होता है। एक कविता का अर्थ जानने के लिये वैसी अन्य कविताओं को भी पढ़कर उनका अर्थ–लालित्य जानना चाहिये। प्रयास करते रहना चाहिये। प्रयास से ही वे कविता के मूल तक पहुँचेंगे और अर्थ तलाशेंगे।

रमेश रंजक का गीत–संग्रह 'मिट्टी बोलती है', माहेश्वर तिवारी का 'नदी का अकेलापन', बुद्धिनाथ का 'जाल फेंक रे मछेरे' और अज्ञेय का गीत 'कांगड़े की छोरियाँ', धर्मवीर भारती का 'ठण्डा लोहा', शलभ

श्री रामसिंह के गीत 'उंगली में बँधी हुई नदियाँ' आदि में जिस तरह शिल्प की नई बुनावट मिलती है, वह पहले नहीं थी। इनको समझने के लिये पाठकों को इनके शब्द की मुद्राओं को जानना जरूरी होगा। इन गीतों का एक भी शब्द बदल दिया जाये या सरल कर दिया जाये तो पूरा गीत अपनी अर्थ-लय खो देगा। वैसे इन गीतों के शब्द-गठन मुग्ध करने वाले हैं।

धर्मवीर भारती का कथन है कि राजशेखर ने डंके की चोट पर कहा था कि संस्कारशील व्यक्ति जैसे-तैसे काव्य रच ही लेते हैं, किन्तु उसे पढ़ना तो वही जानता है जिसे वाणी सिद्ध हो।

9. रचना पर विचारधारा और रचनाकार के अत्यधिक प्रभाव के नतीजे आप प्रगतिवादी कविता के पूरे प्रसंगों को पढ़कर जान सकते हैं। शुरू-शुरू में छायावादी कविता की मुग्धकारी चेतना के प्रतिरोध में प्रगतिवादी काव्य चेतना ने काफी वातावरण बनाया। छायावाद में सुरूचि सम्पन्न लोग अधिक निकट थे। छायावाद के गीत को साधारण पाठक पूरा का पूरा समझ भी नहीं पा रहे थे। इसलिये वह कविता एक विशेष वर्ग तक सिमटकर रह गई थी। प्रगतिवाद ने आमजन को अपने पक्ष में किया और पूरे मध्य और निम्न वर्ग के पाठकों का समूह तैयार कर लिया था। अपनी शिल्प-व्यवस्था के कारण छायावादी कविता इतनी सुव्यवस्थित और शालीन थी कि वह घट्ठे पड़े हुए हाथों से होकर आमजन की संवेदनाओं तक पहुँच नहीं पाती थी। फटी और मैली गंजीवाले लोग इस कविता तक नहीं पहुँच पाते। मिट्टी से लथ-पथ देह वाले जन के लिये चन्दन एक खुशनुमा शब्द ही था। उसकी सोच सकारात्मक थी। अपरिचित आशावादिता पर आधारित प्रगतिवादी कविता जनता के जीवन के लिये मशाल थी।

प्रगतिवादी कविता ने अपने उद्देश्यों को सामने लाने के लिये अकलात्मक सृजन से भी हाथ मिला लिया। अपनी दलीय मान्यताओं का लगातार आश्रय लिया। क्रांति और आन्दोलन के विगुल बजाये गये। लगा कि हँसिया-हथौड़ा का कोरस गाकर उनके शब्दों से ही क्रांति आ रही है। सब कुछ बदल जाएगा। व्यवस्था जन-पक्ष में आ जाएगी।

इसके लिये कविता पर लगातार राजनीति प्रभावी होती चली गई। बाद में कुछ कवि-गीतकार तो राजनीतिक विचारों को ही कविता के आकार में ढालने लगे। इससे कविता की लय टूटी, गीतों को छन्द-भंग से गुजरना पड़ा। गीत-कविता की कोमलता, आत्मीयता राजनीति की आग में झुलसने लगी। कविता श्रीहीन होती चली गई। कविता पर राजनीतिक विचारकों की मुहर लगने लगी। इससे कविता-तत्व का पूरी तरह ह्रास होने लगा। रामविलास शर्मा, नागार्जुन आदि कवियों की सकारात्मक पहल और रचनाधर्मिता के बावजूद दूसरे कवियों ने सिर्फ इसकी गरिमा को कम किया।

क्रान्ति के लिये उनका विचार बहुत सरल था। हंगामा करने को भी वे कविता-तत्त्व से जोड़ने लगे। वे समझना भूल गये कि क्रांति शब्दों नहीं विचारों और कर्म से आती है। अधिकांश कवियों ने क्रांति को शब्दों से जोड़ दिया और एक से एक लहूलुहान मुहावरे भरने लगे। उन्होंने स्वयं को ठगा और कविता को कमजोर किया। अविरल जलधार सी उतरनेवाली, उत्साह के रंगों में रंगी प्रगतिवादी कविता छोटे-छोटे गड्ढ़ों में बदलने लगी। फिर तो आप जानते ही हैं कि उसको अपदस्थ करता हुआ, कई छोटे-छोटे काव्यान्दोलनों को निरस्त करता हुआ नवगीत पूरे स्वस्थ प्रसन्न उत्साह के साथ कविता के पटल पर उतर आया और एक भरा-पूरा कविता का वाद, कविता की शैली मलिन हो गई।

10. उपेक्षा के शिकार श्रेष्ठ कवियों और उनके महत्त्वपूर्ण सृजन को वक्त के अंधेरे से बाहर लाने के इधर बहुत उपक्रम हुए हैं। जीवन पर्यन्त जिनकी एक भी कृति प्रकाशित नहीं हुई, ऐसे कितने ही कवियों की रचनाओं को प्रकाशित कर उनको वक्त के अंधेरे से बाहर किया गया है। तभी वे रचनायें आम पाठकों तक पहुँची हैं। मगर ऐसी रचनाओं के आम पाठक तक नहीं पहुँचने का कारण कुछ और भी है। वे अपने प्रति साकांक्ष नहीं हैं अथवा किसी निजी अथवा सामाजिक कारण से इतने निःस्व हो गये हैं कि अपनी रचनाओं के प्रकाशन और पाठकीयता के लिये सचिन्त नहीं हैं।

फिर भी ऐसे कवियों को आम पाठकों तक पहुँचाने के काम

कमोवेश होते रहे हैं। कितने ही कवियों की रचनायें उनके मरणोपरान्त छपी हैं जिनके सृजन उनके जीवन-काल में प्रकाशन का उजाला नहीं देख सके, उनको वक्त की कैद से बाहर निकाला गया है। होना चाहिये कि साहित्य के फलक पर छोटे-छोटे संगठन बनें जिनके द्वारा ऐसी रचनाओं के प्रकाशन, वितरण और चर्चाओं के आयोजन हों। यह सब वैसे रचनाकारों के जीवन-काल में भी हो सकता है। साहित्य अकादमी, भारतीय भाषा परिषद् आदि कितने ही संस्थानों से ऐसे प्रयासों के द्वारा उन कवियों की रचनाओं को प्रसार मिला है। यह केवल व्यक्तिगत करुणा का विषय नहीं होकर सांगठनिक आयोजन के अंतर्गत होना चाहिये। ऐसे और भी संगठन बनें, आयोजन हों तभी यह काम और प्रबल रूप से हो सकता है।

पहले ऐसे साहित्यकारों को खोजकर उनकी सूची भी बनाना चाहिये। फिर काम आसान हो सकता है। यह काम संस्थागत भी हो, पर निजी सामाजिक संचेतना भी इस काम के लिये बहुत कुछ कर सकती है। क्षेत्रीय भाषाओं के स्तर पर भी यह काम होना चाहिये। जितने प्रतिष्ठित प्रकाशन-गृह हैं, उन सबके द्वारा ऐसे कवियों से पाँच-दस का पता लगाकर उनपर काम हों। यह उनका दायित्व हो। इससे उन कवियों की रचनात्मक त्वरा फिर से भास्वर हो जाएगी।

ऐसे उपेक्षित कवियों के लिये कोश भी बने जिसमें दान जैसे सामाजिक व्यवहार की व्यवस्था हो। अर्थ-संग्रह का काम इससे भी सरल हो सकता है। आर्थिक बाधाएँ इससे दूर हो सकती हैं।

■

गीत की सशक्त सुपरिणति के साक्ष्य : नवगीत और जनवादी गीत

—डॉ. शांति सुमन

हिन्दी गीत-कविता के इतिहास में छायावाद एक लंबी अवधि तक जीने वाली काव्य-प्रवृत्ति है। उसका प्रसार बीस वर्षों तक अबाध गति से होता रहा। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी केवल गीतकार नहीं थे, वे कारीगर हाथ थे जिन्होंने पूर्व से आ रही गीत की विरासत को नये सिरे से रचा, उसको नया स्वरूप दिया और अंतर्कथ्य के साथ उसके शिल्पपक्ष को भी सँवारा। शिल्प की दृष्टि से गीत को उनका अवदान बहुत अधिक है। शब्द-गठन से लेकर छंद, बिम्ब-प्रतीक, मुहावरे, नयी गीत-रचना के लिये अपेक्षित अलंकरण को भी उन्होंने समृद्ध किया। प्रकृति अब अलग नहीं, उसके कलेवर में ही समा गई थी। व्यक्ति के अंतर्मन की कोमलकान्त कल्पनाओं और तुहिन से भी तुनुक भावनाओं के सौन्दर्य का अपार संसार उन्होंने रचा। गीत-कविता में स्वप्नों का वैसा शिखर फिर नहीं बना जिसमें व्यक्ति का एकांत, निजी आत्मीय सम्मोहन गूँजता हो।

छायावाद जिन दिनों लिखा जा रहा था वे राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों से भरे बड़े अस्थिर दिन थे। देश की अस्सी प्रतिशत जनता अंग्रेजी शासन के शोषण-दमन के कारण उसकी विद्रूप व्यवस्था को सहने के लिये विवश थी। प्रसाद के राष्ट्रीय शौर्य, पंत की 'भारतमाता ग्रामवासिनी' और महादेवी के अदृश्य आराध्य के पूजा-अर्चन में समाज और देश की विपन्न शोषित जनता को जगह नहीं मिल रही

थी। एक निराला ही वह विकल्प भी थे और अपवाद भी जिन्होंने अपनी आत्मानुभूतियों से भरी 'बादल राग', 'भारति जय-विजय करे', 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' आदि रचनाओं में सामाजिक और मानवीय सरोकार की अंतर्दशा को सामने किया है।

प्रगतिवाद में केदार और नागार्जुन के गीत समाजार्थिक स्थितियों के सघन चित्रण के कारण बेहद चर्चित हुए और गीत विधा ने विस्तृत आयाम प्राप्त किये, पर शिल्प की जिस समृद्धि की शुरुआत छायावाद ने की, उसका ह्रास हुआ। राजनीतिक कारणों से वे गीत वाह्य जगत के जितने कंठहार बने, उतने अंतर्जगत् के नहीं बन पाये। करुणा, मनुष्यता आदि सांस्कृतिक और मानवीय परिस्थितियों के उद्घाटन के बाद भी प्रेम की वह 'जुही की कली' बाट जोह रही थी।

उसके बाद कई काव्यान्दोलन आये-गये। वे सभी नितांत अल्पजीवी रहे। तत्कालीन रचना भूमि की अजिर गुहा से एक रोशनी निकली जिसने गीत की त्वरा को फिर से भास्वर कर दिया। वह नवगीत था जो कोई काव्यान्दोलन नहीं था। तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक और गीतात्मक परिस्थितियों से उपजा अभिव्यक्ति का वह तरुण निनाद था जिसकी अपेक्षा लम्बे समय से गीत विधा को थी। गीत के इतिवृत्त में वह ऐसा समय था जो नयी पहचान लेकर समकालीनता के दवाब में गीत के विस्तृत फलक पर उतरा। इस बात का संकेत करना आवश्यक नहीं है कि समाजार्थिक परिस्थितियों के बदलने से गीत की अवधारणा कैसे बदल जाती है। प्रथित और पारम्परिक गीतों से अलग और कुछ विशिष्ट रूप में नवगीत ने अपनी यात्रा प्रारम्भ की। नवगीतकारों ने अत्याधुनिक साँचे में गीत को ढालने की रचनात्मक पहल की। अपनी जड़ों से जुड़कर ही गीतकारों ने गीत की विकसनशील प्रवृत्ति को विस्तार दिया।

सन्'58 से 'गीतांगिनी' से प्रारंभ हुए नवगीत ने अपने सुदीर्घ कालखंड में स्वयं को कितने ही परिवर्त्तनों का साक्षी बनाया। कभी शब्द गठन, भाषा-रैली, बिम्ब प्रतीक-उपमान, कभी कथन की नयी-नयी

मुद्राएँ, घर-परिवार, समाज के नये सरोकार, खेत-खलिहान, कल-कारखानों के यथार्थ-सबकी समवेत अभिव्यक्ति नवगीत की जिम्मेदारियों में शामिल हुई। वस्तुतः नवगीत मनुष्यता का सार्थक-प्रामाणिक दस्तावेज बनकर अपनी भूमिका को तेज करता रहा। बिना पारिवारिक, सामाजिक और मानवीय हुए कोई भी काव्यधारा आगामी शिखर तक पहुँचकर समय का स्वप्न नहीं बुनती। नवगीत की उच्छल जलधारा में समय का शंख प्रतिध्वनित होते हुए सुनाई देता है। वस्तुतः वह गीत की विकास-यात्रा की अनिवार्य परिणति के रूप में विकसित हुआ।

किसी भी कला-संस्कृति का मूलाधार सामाजिक व्यवस्था होती है। इसलिये मूलाधार में परिलक्षित होने वाले परिवर्त्तनों का प्रतिबिम्ब कमोवेश कला-संस्कृति में अवश्य होता है। संवेदनात्मक अंतर्वस्तु में आने वाले परिवर्त्तन के समानान्तर गीतों में भी बदलाव आता है। हर रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष में ही विकसित होता है। तब नवगीतकारों के दायित्व भी बड़े थे। गीत को नयी दृष्टि से देखना, सोचना और लिखना गुरुतर कार्य था। नवगीतकारों ने सबसे अधिक ध्यान भाषा और अछूते बिम्बों को जुटाने में दिया। उपमा, रूपक की ताजगी और भाषा सादगी के कारण भी नवगीत अपने पूर्ववर्ती गीतों से अलग दिखते थे। नवगीतकार के भाषा-प्रयोग जितने पैने हैं, उतने ही सम्मोहक भी।

सन्'60 से '75-'80 तक नवगीत पूरी तन्मयता से लिखा जाता रहा। रमेश रंजक का पहला नवगीत संग्रह 'गीत विहग उतरा' सन् '69 में प्रकाशित हुआ था। उसके पहले ठाकुर प्रसाद सिंह, चन्द्रदेव सिंह और शम्भुनाथ सिंह के नवगीत संग्रह आये थे। उमाकांत मालवीय का 'मेहदी और महावर' '63 में आया था। शान्ति सुमन का नवगीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' '70 में और नचिकेता का 'आदमकद खबरें' '72 में प्रकाशित हुआ। नवगीत की जमीन पककर तैयार हो गई थी। कोई भी नया रचनाकार उन दिनों नवगीत ही लिखता था, लिखना चाहता था। वह एक

वैसा समय था जब गीतकार के रूप में नवगीत लिखना समय की संवेदना से जुड़ना था। नवगीत विधा में इतना आकर्षण था कि कितने ही कविता-लेखक गीतकार बन गये थे। जिस तरह धूप मुट्ठी की पकड़ में नहीं आती, उसी तरह गीत की संवेदना भी सबकी पकड़ में नहीं आती। गीति तत्व एक ऐसी संवेदना है जो जहाँ भी होती है, अपनी कोमलता की पहचान छोड़ती है। नवगीत तत्कालीन समाज और जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बनकर आया। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, नवगीत की प्रासंगिकता बनी रहेगी। तनाव को कम कर ऊर्जा को गतिशील करने का यह कारगर औजार है।

नवगीत के मध्यवर्ती दौर में उस पर यह आरोप लगा कि उसमें तनाव, कुण्ठा, पीड़ा, पराजय और रंगीन सपने अधिक हैं। इन सबके लिये तत्कालीन आर्थिक सामाजिक व्यवस्था ही जिम्मेदार है। आजादी की लड़ाई से मन-प्राण से जुड़े युवाओं को आजादी से बड़ी उम्मीदें थीं। पर वे उम्मीदें एक-एक कर धराशायी हुईं। उनके स्वप्न भंग ने उनकी क्रियाशीलता को कम कर दिया। पढ़े-लिखे युवकों की बेकारी, बेरोजगारी, गाँव की कृषि-व्यवस्था की बदहाली तथा अनिश्चित भविष्य के कारण युवाओं की बेचैनी, त्रास और घुटन की मानसिकता का अनुभव नवगीतकार ने निकट से किया था। अधिकांश नवगीतकार निम्न मध्यवर्ग से आये थे और मध्यवर्गीय त्रासदी से पीड़ित भी थे। यह कहना एकांगी होगा कि नवगीत में केवल मध्यवर्गीय पीड़ा को ही अभिव्यक्ति मिली है। बेकारी के मनस्ताप को झेलते हुए युवकों में केवल मध्यवर्ग के ही युवा नहीं थे, अपितु गाँव या छोटे शहरों के वे युवा भी थे, जो पेट की खातिर गाँव छोड़कर महानगर की ओर पलायन कर रहे थे। छोटे शहरों के साधन और पूँजीहीन युवा भी थे जो दिल्ली, असम, पंजाब आदि में अपना भविष्य तलाश रहे थे। अभाव कभी-कभी मनुष्य को स्वप्नजीवी बना देता है। नवगीत का स्वप्नलोक इन अभावों की ही देन है। सपनों के बारे में नवगीत में जितना कहा गया, छायावाद को छोड़कर और किसी काव्य धारा में नहीं। नवगीत ने अपनी सभी पूर्ववर्ती काव्य धाराओं से अधिक

लोकप्रियता अर्जित की क्योंकि इसमें लोकरंग और लोक संवेदना भरी हुई थी। इसकी अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक चमकीले, ताजे और मोहक बिम्बों से भरी हुई है। अपने मानवीय आधार के कारण नवगीत की टहनियों का हरापन कभी कम नहीं होगा। नवगीत आज भी उसी त्वरा से लिखे जा रहे हैं और नवगीत संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं। अपनी सांगीतिक करुणा और सुरीली आत्मीयता के लिये नवगीत आगामी वर्षों में और भी अपनी रचनात्मक भागीदारी को सिद्ध करेगा।

बदलते समय में किसान आन्दोलन, नक्सलवाड़ी आंदोलन का प्रभाव गीतकारों की रचनाधर्मिता और उनकी अभिव्यक्ति में शामिल होने लगा। सत्तरोत्तर के दशक में जनवादी गीत-रचना प्रारंभ हुई। श्रमजीवी संघर्षरत जन इसके केन्द्र में आये। किसान-मजदूरों के श्रम-संघर्षों को लिखते हुए गीतकारों ने व्यवस्था के चेहरे को बेनकाब किया। सत्ता के जोर-जुल्म और पूँजीवादी अत्याचारों का खुलकर विरोध किया। इस तरह गीत में सामाजार्थिक पीड़ाएँ- त्रास, घुटन, अभाव, शोषण और अमानवीयता के प्रति आक्रोश व्यक्त हुए। आर्थिक विषमता, निर्धनता की पीड़ा, आम आदमी के सरोकार के संवेदनशील और जुझारू दोनों ही पक्ष आठवें दशक से सघन रूप में व्यक्त होने लगे। व्यवस्था का पुरजोर विरोध प्रारंभ हो गया। जनवादी गीत नवगीत का ही अगला विकास बनकर आया। इसमें श्रमजीवी वर्ग के दैनंदिन जीवन की पुनर्रचना की गई है। जनवादी गीत श्रमजीवी, शोषित-दलित वर्ग के आँख-कान, पेट-पीठ, हृदय की गूँज से भरे हुए हैं। अधिकांश जनवादी गीतकारों ने अपनी मध्यवर्गीयता का अतिक्रमण कर मेहनतकश जनता की वास्तविक जीवन-शैली और संघर्षों के अनुरूप अपनी संवेदना और विचारों का गठन किया है। इससे जनवादी संघर्ष को एक नयी जमीन, एक नयी दिशा मिली है। इन गीतों में एक ओर शोषित-दलितों का संघर्ष है तो दूसरी ओर व्यवस्था के प्रतिगामी और विद्रूप चेहरे भी। उनके जीवन-संघर्षों को गीत में ढालने के लिये जनगीतकारों ने क्रांतिकारी अंतर्वस्तु के साथ लोक-शिल्प, मुहावरे और धुनों को भी अपनाया है। इसलिये इन गीतों

से शक्तिशाली जन-मानस से लैस जन संगठन भी तैयार हुआ। जब तक समाज में भूख, शोषण और गरीबी है, जब तक व्यवस्था के कुचक्र में जनता फँसी हुई है, जन मुक्ति के प्रयास में जनवादी गीत रचे जाते रहेंगे। अपने समय, समाज के जरूरी सवालों से जनवादी गीत जुड़ते रहेंगे। विश्व राष्ट्रीयता श्रमजीवियों को एकजुट करने में सहायक होगी।

अपनी वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि, सचेतन जनपक्षधरता और जनवादी अंर्तवस्तु के कारण समकालीन जनवादी गीत एक सुनिश्चित आकार ग्रहण कर चुका है। जनवादी गीत की रचना प्रक्रिया अत्यंत जटिल और दुहरी होती है। यहाँ भावों की गहराई, अनुभूति की सघनता और आकार में संक्षिप्तता पर विशेष बल होता है। जनवादी विचार के अनुसार कला सामाजिक संसार में ही अपना अस्तित्व रखती है, इसलिये गीत का निर्माण मात्र ध्वनियों और शब्दों के द्वारा कभी संभव नहीं है। सही जनवादी गीत की रचना तभी संभव है जब युगानुरूप संघर्षशील क्रांतिकारी वैचारिक अंतर्वस्तु के साथ रूप और शिल्प का सहज तादात्म्य हो।

अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये जनवादी गीत भी बिम्बों और प्रतीकों का आश्रय लेता है। बिम्बों के अभाव में गीत रचना का अस्तित्व ही संकटग्रस्त हो सकता है। बिम्ब अमूर्त्त कल्पना-लोक से नहीं, वरन सीधे सामाजिक जीवन से प्राप्त किये जाते हैं। इसी कारण से जनवादी गीत की जीवन्तता और यथार्थपरकता अक्षुण्ण है। जनवादी गीत जीवन को ही अपना स्रोत मानता है और सीधे जीवन से प्राप्त अनुभवों और प्रेरणाओं को महत्व देता है। जनवादी गीत अपने विचारों और मूल्यों के कारण संपूर्ण मानवता को एक मुकम्मल परिवार समझता है और उसके स्वप्नों को पूरा करने में जुझारू सक्रियता से काम लेता है।

नवगीत प्रारंभ से ही करुणाशील रहा। पहाड़ों, पठारों, जंगलों में जाकर भी, सामंतों का प्रतिरोध करने पर भी और विपन्न झोपड़ियों की भूख, बेघर होते किसान-मजदूर की पीड़ा लिखते हुए भी उसकी अभिव्यक्ति अपनी सहज-स्वाभाविक, शालीन और विनम्र मुद्रा में रही।

जनवादी गीत में प्रतिरोध और आक्रोश की भाषा के शब्द तक लोहा की तरह दीखते हैं। नवगीत में भी खेत-खलिहान की हरियाली की खुशी और उसके उजड़ने से उदास होती प्रकृति दीखती है। जनवादी गीत की प्रतिबद्धता उसके विचारों के कारण है। नवगीत के पास उसकी रचनात्मक प्रतिबद्धता है जिसकी पूँजी मानवीय संवेदनायें हैं। पारिवारिक-सामाजिक संबंधों की आत्मीयता का वह विश्वासी है। जनवादी गीत मुक्तिकामी जनता के मुट्ठियाँ बनते इरादों वाले गीत हैं। वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण दोनों की जमीन अलग-अलग दीखती है। जनवादी गीत संघर्ष की भाषा में अनन्त जनाकांक्षाओं की गूँज से भरे हैं। जनवादी गीत में वर्ग शत्रु को मात देने की ईमानदार कोशिश भी है। रोटी और जमीन के जलते हुए सवाल पर मुठभेड़ की भी बात आती है। व्यवस्था-परिवर्तन उसका मूल उद्देश्य है। प्रतिकूल सामाजिक परिवेश और सत्ता के मकड़जाले के बीच अंधेरे में मुट्ठी भर इरादे इनके श्रम साहस के मूलमंत्र हैं। सत्य नारायण और बुद्धिनाथ मिश्र के कई गीतों में इनके साक्ष्य हैं।

जनवादी गीत के इस दौर में भी नवगीत लिखे जा रहे हैं जिस तरह नवगीत की सशक्त सुपरिणति की यात्रा में भी जनवादी गीत की रचना अविराम गति से हो रही थी। राजनीतिक प्रतिबद्धता के कारण जनवादी गीत यथार्थ के अधिक निकट है। मानवीय करुणा में प्रकृति की अजस्र सम्पदा का आभरण लेकर चलनेवाला नवगीत आगे के अनेकान्त वर्षों तक अपने सौन्दर्य राग से अभिभूत करता रहेगा। जब तक भूख और गरीबी है, अव्यवस्था की किरचें हैं तब तक जनवादिता अस्त नहीं होगी और जनवादी गीत अपने प्रकर्ष को प्राप्त करता रहेगा। दोनों ही गीत विधाएँ जीवन्त बनी रहेंगी आने वाली सदियों-सदियों तक। गीत की नदी में अनुभूतियों और विचारों का अथाह जल होगा। एक बात फिर कहूँ कि अधिकांश जनवादी गीतकार पहले नवगीतकार ही थे। रमेश रंजक का पहले नवगीत-संग्रह ही आया था। माहेश्वर तिवारी, मेरा और नचिकेता का भी पहले नवगीत-संग्रह ही प्रकाशित हुआ था। बाद में नचिकेता ने किसी दुरभिसंधि के कारण नवगीत का

विरोध किया। कवितावादियों का विरोध या उसका विरोध भी अस्त हो गया।

2016 में मेरे गीतों का संग्रह **'लाल टहनी पर अड़हुल'** आया। फिर किन्हीं कारणों से **'सान्निध्या'** अब प्रकाशित हो रही है। जयनंदनजी, यश मालवीय, अखिलेश्वर जी की आत्मीयता को शुभकामनायें। अशोक शुभदर्शी ने मेरा बहुत सहयोग किया। उनको अनन्य स्नेह। ये गीत स्वयं कुछ कहेंगे। मैं अपने घर के सभी लोगों के साथ अपने शुभैशियों को भी स्नेह देती हूँ। जमशेदपुर के 2, कैजर बंगला, कपाली रोड, कदमा में रहती हुई मैंने इसकी सामग्री तैयार की थी। अब समीक्षा प्रकाशन से यह प्रकाशनार्थ प्रस्तुत है। राजीव जी का अमूल्य स्नेहाभार।

मुझको प्रतीक्षा रहेगी जब **'सान्निध्या'** छपकर आप सबके हाथों में आएगी। उस बेहतर दिन की आशा में—

शांति सुमन
मीठनपुरा, क्लब रोड, वी.सी. गली,
रमना, मुजफ्फरपुर—842002
मो० - 8789390597

■

खाली हाथों में फूल

धोकर जूठन होटल में
बच्चा लौट रहा है
सपने समेटता मन में
अपना सोच रहा है

देखा उसने आज नेह से
कोमल सी आँखों वाली को
पहली बार रोशनी आई
धान की दूधिया बाली को
खाली हाथों में जैसे
फूल समेट रहा है

आँखें बन्द कर देखा नहीं
अब तक हँसियों वाले सपने
खुशी जगाने वाले पल तो
लगते पंखुड़ियों से कँपने

नाक का बुन्दा मेला का
शोर कचोट रहा है

बाँध लाल अंगोछा माथे
कामों पर जाएगा कल से
उसकी उमर के बच्चे उसको
हाथ दिखाये उछल-उछल के
छान बनाने को घर की
धरती सींच रहा है।

1/5/2018

◆

ऋचाएँ उतरीं

आवाज तुम्हारी हवा में
सुगंधित धुएँ सी ठहरी
पढ़ता ही रहा मन आँख में
कितनी ऋचाएँ उतरीं

उजली सुरभित प्रीति लपेटे
बेले की अनगिनत पँखुड़ियाँ
स्नेह के अलिखे कथानक से
जुड़ती जाती कितनी कड़ियाँ
कुछ दूरी पर जो लिखी रही
साखी कभी नहीं बिसरी

जामुनी रंग रंगा जब से
मौसम बेहद सुकुमार हुआ
और अँधेरे की नरमी ने
रोशनियों का बाजार दिया
फिर से लगी है याद आने
पुराने गीत की टुकड़ी

तुम्हारे शब्दों ने पहले
पूछी धूपों की आगमनी
और डालकर तेल दिये में
मौसम ने उसकी कथा बुनी
झाड़ पंख को उड़ती चिड़िया
सहज मुक्ति बड़ी गहरी।

26/8/2018

◆

बच्चे अंधेरे के

रोशनी को ढो रहे
बच्चे अंधेरे के
खड़े तनकर नहीं जो
सारथी सबेरे के

रोशनी का बोझ ढोते
कई टुकड़ों में बँटे
हाथ में मुँह नहीं शामिल
पीठ में जैसे सटे
दबे भीड़ में कन्धे
सुर लिये मछेरे के

छोटी-छोटी खुशियों के
रंग भरे दुख सारे
अपनी कहते नहीं कभी
दिखते दिन में तारे
रोशनी वहीं निकले
जल मथे अँधेरे के

फटा सा कुरता पुराना
हुआ परब गरीब का
आँचल का तो धन माँ का
खुशियों के करीब सा
चूती छानी फिर भी
दिखे चाँद फेरे के

24/4/2018

◆

सालों भर वसंत

डाली एक जुही की
दूसरा अमलतास है
सालों भर वसन्त रहता है

आमद है खुशियों की
तन हिला हुआ कास है
नयन सोना आखर लगता है

बैठा बतियाता आपस में
खेत बिछा वसन्त इंगुरी
मोहक कथा बुनी किंशुक सी
पहन हाथ हरियाली चूड़ी

नथ पर मणि के सजता
इमन भर सहज राग है
दिवस सुरभित सावन लगता है

सुगम गीत बैठा सिरहाने
गाती हुईं ताल में साँसें
फूल की बस्तियाँ बाँधती
ऋतुगंधा ने फेंके पासे

गुलमोहर अपना सा
गंध भरता यह आकाश है
रंगों का झरना लगता है

दरवाजे पर तालमखाने
घर पोखर का पुरइन लगता
बच्चे जहाँ पाँव हैं रखते
उजला कमल ताल का लगता

पहरा है तारों का
मिले सूरज भी परिन्दों से
घर ही चाँद शरद लगता है।

10/4/2018

♦

धार समय की

तट को छूकर फिर लौटी है
नया वर्ष है धार समय की

पूरी आज नहीं फूली हैं
कल जो खिलने को थी कलियाँ
शोर बुने थे जो बच्चों ने
अब भी गूँज रही हैं गलियाँ

फुनगी पर पेड़ों की कल से
बची हुई हैं किरनें लय की

कुछ भी अलग नहीं है पहले
जैसा ही नदियों का पानी
पत्तों पर जो धूल जमी है
लगती वैसी ही अभिमानी

सुर में बँधे हुए सुर जैसे
बदली नहीं कथायें जय की

पाँवों में नूपुर के बदले
बँधे नहीं मृदंग आज भी
तीन रंग ही तो झंडा के
रहे फहरते सदा आज भी

उसी एक सड़क पर बेटियाँ
जला रही हैं गठरी भय की।

1/1/2018

◆

दुनिया अपनी

तुम जो मिले तुम्हीं से सीखे
सारी दुनियादारी

तुमने मुझे बताया
बात करूँ किससे, कैसे
फिर है सीखा मैंने
इससे भी, उससे, सबसे

यह भी सीखा कैसे दुनिया
होती अपनी सारी

भूख-प्यास को जाने
फिर खोजे सुख के गाने
घर की छान जरूरी
अपनापन के भी माने

भरा हुआ मन से ही समझे
भरती हुई बखारी

बँधी हुई पाँवों में
दिन भर की आवाजाही
चादर लिये धूप की
थी होने लगी मनाही

तिनके भी होने लगते हैं
दुख की नयी सवारी।

13/12/2017

♦

सपनों वाला धागा

नहीं नदी ने अपने मन से
मन का सहज किया
जब भी जीने का मन आया
बरसों नहीं जिया

रखा कान पर हाथ नहीं
सुनना अपने मन का
सपनों वाला धागा भी
है अबतक अनसुलझा
अबतक रहे अनपढ़े इतने
पन्ने जीवन के
चाहा जो मन से वैसा ही
अब तक नहीं हुआ

कभी किसी मुँह से बातें
मीठी ही बहुत लगीं
कोई नहीं परायापन
कितनी तो सहज सगी

तेरा कहा हुआ होता जो
कुछ वैसा मन में
पन्ना बंद किताबों वाला
खोला नहीं गया

तुमसे बाँट लिया तुमको
कब तुमको लौटाये
तुमको याद न हो शायद
ऐसे सौ बार हुए
तुम ही तो थे ऐसा कहते
अनहोनी होगी
देखती रही अपलक धरती
बस आदान हुआ।

19/11/2017

♦

प्रेमपत्र पुरइन पर

प्रेम पत्र पुरइनों पर देख अधूरा
ताल में उगा चन्द्रमा
बेचैन कोमल शपथ से हो पूरा
रात भर जगा चंद्रमा

कहा-सुनी हुई धूप से
बन्द बोल चाल भी हुआ
दिन-दुपहर आते-जाते
याद के समुद्र को जिया

सरपत के पात पर बैठी हवाएँ
देखता सगा चन्द्रमा

बीच जंगल के गाछ के
पीपल का पेड़ अकेला
जवा उगी पास नदी के
खाली में लगता मेला

यहाँ-वहाँ घूम कर फिर पोखरों में
लगा है ठगा चन्द्रमा

देहरी पर रुकता हुआ
खुशबुओं भरे भावों से
जानेगा यह नेह वही
गुजरता जो अभावों से

देने को अभी बहुत कुछ है बाकी
पर साधु लगा चन्द्रमा।

12/11/2017

◆

मन के पन्ने

पाल रही अपने सुख-दुख को
अपने ही मन में
नदी, तुम्हारे मन के कितने
पन्ने नहीं खुले

कितना लिया उधार धूप से
बचा है अब वर्षा का
कब-कब सूरज के दरवाजे
जाकर माथा टेका

कहने को तो कितने ही थे
तेरे दर्पण में
नदी, तुम्हारे सुख के कपड़े
अब तक नहीं सिले

होती कास-पटेर कहो तो
होता अच्छा कितना
गुलाबखासों के रस जैसा
मीठा सचमुच उतना

तेरा बस सरवस जैसा ही
लगता रहता सबको
नदी, तुम्हारे मन के मरहम
अब तक नहीं मिले।

डूबता नहीं जब तक सूरज
तुम मंत्रों सी जगती
मन के कितने ही बंधन पर
शंखों सी हो दिपती

तुमने चाहा नहीं इसी से
मन-अंचल सूखा
नदी, तुम्हारे मन के सपने
हरदम धुले-धुले।

4/11/2017

♦

सवाल बोते हैं

खेतों में अब किसान
केवल सवाल बोते हैं
जाने कैसे-कैसे
सपनों को ही जोते हैं

ईखों के पत्तों ने कह दिया
गुड़ों का हाल
बाजारों में बिकने आये
माल के जाल

किसान देख मेघ को
पानी बनते होते हैं

बच्चों के उदास मुँह दिन की
लाली छीने
धूलों और धूप दोनों की
भाषा बीने

अब किसान के माने
केवल बागी होते हैं

खुरपी और कुदालों की यह
भाषा सुनना
आपस में अनबन की बातें
गुनते रहना

बाली सूख रही जो
अपने ही तन होते हैं।

31/10/2017

◆

खेत के मेड़ों से

गाती है अब गीत हवा
चौमासे के
फूलों की खुशियों में है
मौसम शामिल

घर से निकली दिनभर
खेतों-खलिहानों में
उगती सोये में भी
किरनें सिरहानों में
छोटी बच्ची, घर-खेतों
में है शामिल

रिश्ते अब जुड़ते गये
जमीन के मेड़ों से
बाबा से ही दिखते
बतियाते पेड़ों से
सुबहों में ही अब दुपहर
भी है शामिल

लीपती आज पीली
मिट्टी से सब घर को
गेरू से लिखकर ही
न्योते देव-पितर को
अभी तो खुशियों में नया
धान भी है शामिल

10/8/2017

♦

हँसी बेगम बेलिया

जिद में ही मौसम ने
हवाओं को छू लिया
हरे-हरे पातों में
हँसी बेगम बेलिया

सड़कों पर चिड़ियाएँ
पेड़ से नहीं उतरीं
खाली पाँवों चलती
धूप भी नहीं ठहरी

साथ रहती समय के
नहीं तो कुछ भी किया

चाँदनी में भींगती
पानीवाली नदियाँ
रिश्ता ही बनाती हैं
ये आती जो सदियाँ

अब सूखे खेतों ने
न जाने क्या कह दिया

थी पेड़ की जड़ों में
खिड़कियों में घरों की
पानी भरे कुँओं में
महक में मंजरों की

मिल गई वह हवा है
देखना जो क्या किया।

3/12/2016

♦

हवा कहने लगी है

अब समय कहने लगा है
धार के विपरीत मत जाना

वे भी दिन थे सहज उतने-उतने
विपरीत जैसा कुछ न था
पंख लेकर सैकड़ों उड़ते हुए
एक बंधन न मन को था

अब हवा कहने लगी है
रुख देखकर ही पग बढ़ाना

फूल की जो पंखुड़ियाँ रंग-सनी
गंधों-खुशबुओं से भरी
रोकती है अब नहीं कहीं से भी
दिपती सी सीपिया घड़ी

अब नदी कहने लगी है
नहीं सपने लहर से लाना

सहज जीते रहे थे कामनाएँ
उनपर हजारों साँकलें
मन नहीं अब बादलों सा घूमता
जलता रहे जितना जले

धूप अब कहने लगी है
सिर पर नहीं मन को चढ़ाना।

25/4/2017

◆

अगवानी में वसंत की

कलम लगा उस बरस आम का
उसमें मंजर आये
हम फूलों-मंजरियों से ही
रितु को जीते आये

पता समय का हो जाता था
चिड़ियों के आने से
लगता था तब शरद सुहाना
खंजन के गाने से

जब कटे धान के खेतों में
मोर नाचते आये
अगवानी में हम वसंत की
मेड़-मेड़ तक छाये

गाछी में शीशम-गुलमोहर
पर गपशप चिड़ियों की
पछुवा की आवाजाही में
मेघों की झड़ियों सी

खुश हो हाथ पकड़ बादल के
पोखर बीच नहाये
नीलकमल ने आँख खोलते
मोती खूब लुटाये।

12/2/2016

◆

खिलेगी केतकी

देखना इस डाल पर खिलेगी जब केतकी
घोल देगी रंग को हवाओं में खेत की

ईख के पत्ते हिलेंगे पुकारेंगे
उस ताल को
आँखें खोलता कमल हिलकोरेगा
शैवाल को
देखना कथा होगी पटेरों पर रेत की

कुछ भी कहा जाता जब ऐसे नहीं
इस नदी से
भीगी आँख लिखती कई उलाहने
भी सदी से
देखना फिर अभी ही दोस्ती धूप-बेंत की

सोयेंगे पंख की छाँह में बच्चे
पाखियों के

हल्दी में घुले-मिले हैं लाल रंग
धोतियों के
देखना सुबह रात से रंगेगी चैत की।

4/8/2016

बादल बरसा

मिट्टी में भरी नमी
जी भर बादल बरसा

फटने लगे खेत बाध में
पत्तों पर उतरा पीलापन
कंठ सूखते पटेरों के
दूबों से उतरा हरापन

मन में थी बड़ी कमी
अब से मौसम हरसा

तीरा के फूलों ने कहा
कानों में हँसता था साहिल
ले-देकर यही तो सुख था
अभी से हुआ उसे हासिल

नदियों को दिखी जमीं
उसका बीता अरसा

सटे देखते देहरी पर
छठ पूजा के सभी 'आरत'
दो बीघा जमीन के लिये
है मचा हुआ महाभारत

बरसा की धार थमी
बाढ़ भाँजती फरसा

5/8/2016

♦

नदी नहाती

केश खोलकर नदी नहाती
मन से बरसा बादल

बची उमंगों की नमियाँ
भरी पिछली वर्षा की
जागती कटे धानों की
जड़ में लय आशा की

आते-जाते बया बताती
बदल गया है बादल

खेतों में दिखती पीली
चूनर की परछाँईं
कहती अभी खुशी मन की
जीने की भरपाई

हरे पात पर हवा लजाती
पाहुन बनता बादल

कोई पाती लिखी हुई
कोशी की रेतों में
पढ़ता किसान का बेटा
बासी मुँह खेतों में

आँचल से कर हवा मनाती
कितना हँसता बादल।

16/5/2017

♦

रेतों पर निशान

रेतों पर निशान दिखते हैं
नदी सुबह से ही रोई है

आँखों के मोती सँभालकर
नहीं कभी जो रोई
दुख के पन्नों पर ही लिखती
मन की पीर सँजोई

मलिन फूल के मन छिपते हैं
सुख की सब लिपियाँ खोई हैं

मन की खुशियाँ दूरागत भी
कोमल धुन सी लगतीं
आध अधूरे सुख की लपटें
फिर-फिर मन में जगतीं

चिड़ियों के डैने हिलते हैं
कोई कोमलता सोई है

और बँटेगी कितनी जिनगी
बँटती हुई इकहरी
मुखड़े पर की चमक लुनाई
सब कुछ भूली-बिसरी

सपने सब उदास लगते हैं
कब से लगन लगी कोई है।

28/4/2017

♦

बड़े यतन से

हजार तल्खियाँ धूपों की
और हवा की नई खरोंचें
जाये कब छोड़ धूल इस घर की
बड़े यतन से पाले मन में
बोझ हो गये सपने
ऐसा हुआ पराये लगने
लगे सभी हैं अपने
कब जाये बदल हवा इस घर की
यहीं कहीं था मधुबन मन का
मीलों खुशी नचाता
अब पसरा है बियावान सा
टूटी लयें बचाता
हैं सजल हुईं आँखें इस घर की
अब हैं केवल बचे याद में
दिया जो ले यतन से
बातों का सीधा जबाव भी
अब मिले नहीं मन से
मामूली सोच हुई इस घर की।

26/4/2017

♦

सीपिया शंखों वाली

बाँट रहे हमसे हमको दुख बड़े सयाने से
जिनमें मन बसता था अब लगते अनजाने से

मन निर्झर था, था प्रवाह
उसका कितना निर्मल
धमक शंख-सीपी वाली
थी उसमें सब शामिल

गीत-गीत मन गंगा जैसे लगे सुहाने से
मन के हिरन चौकसी भरते नए तराने से

वैसे परवत की भी तो
तकदीर बदल जाती
मन की दीवारों से अब
भी है कविता गाती

अपने बिखर रहे मन जैसे साज पुराने से
दुखते सहज हैं कर्जे पिछले नहीं चुकाने से

कोमल आँखों के भीतर
कहीं अशान्त कोने
मन की आशाओं की है
उम्र लगी कम होने

कँपती रही दिये की लौ की कथा जमाने से
दूर नहीं जाते आँसू हैं लाख मनाने से।

26/4/2017

♦

कितने आसमान

रेतों पर निशान देखे हैं
नदी सुबह से ही रोई है

नदी किनारे के पेड़ों पर
चिड़ियाओं का आना-जाना
सरपत के झुरमुट में सुख से
बैठे कीटों का बतियाना

कितने आसमान देखे हैं
रातों नहीं नदी सोई है

मंदिर के कलशों पर आकर
रुकने लगीं ललायी किरनें
खुशियों के कालीन बिछे हैं
खिड़की खोल रखी है घर ने

उगते वियाबान देखे हैं
नदी हौसले में खोई है

बिछाई संघर्षों ने राहें
राहों पर चलने के सपने
कोई नहीं अकेलापन है
लगते तो हैं सारे अपने

सारे दुख समान देखे हैं
कहने वाला भी कोई है।

18/5/2017

♦

आधी हँसी हँसकर

आधी हँसी हँसकर रुके दिन सा
मिलता सूरज नदी से मिथक सा

धूप को कंधा उठाये
आ गयी उजली दुपहरी
रास्ते के वेंतवनों में
अधूरी वह कथा ठहरी

आँसू बहा रोता हुआ मन सा
दिन है तितली-फूल के मिलन सा

जीवन के कई पलों से
हैं सामने रुकी छाँहें
रखते पाँवों को आगे
मिलने को निकली राहें

डाल पर बढ़ती लतर के तन सा
तरहथ में दबी नेहिल कथा सा

छोटी उम्र पर बोझ सा
समझती करुणा की नदी
जहाँ छोड़कर बढ़ जाती
उसको यह निर्मम सी सदी

धूल भरे घर के इस दर्पण सा
आधी रोटी खाने के छन सा।

10/6/2017

♦

आ गये हैं गाँव

सफर में रख दिये हैं पाँव
देखो रुक नहीं जाना

सुबह से ही भीगती आती हवायें
आँधियों को पास से छूती दिशायें
शहर से आ गये हैं गाँव
देखो थक नहीं जाना

मुँह छिपाकर आ गये हैं बादलों के
झुंड के झुंड छौने गुजरे पलों के
दिखाती आइना है छाँव
देखो झुक नहीं जाना

जब भी जले हैं दिन तपी दोपहर में
याद आये नदी की पिछली लहर में
नदी की रेत में है नाव,
देखो दुख नहीं जाना

17/6/2017

◆

किरण एक उजली

एक अरसे बाद आई फिर खुशी
हवाओं के मुँह लगी चिड़िया हँसी

धीरे से डालियाँ लगी हिलने
धूप चली छाँवों के घर मिलने
रोज की तरह अलग कथाओं सी
जिद में ही मोगरे लगे खिलने

किरन एक उजली पहाड़ जा बसी
पतली सी देह लगी सोन उर्वशी

मूंगों के विरवे खेत में उगे
लहरों के मंत्र-गीत फिर बजे
थरथराते हैं सम्मोहन धुन के
रात कमल-पाँखी देह सी लगे

कथा में ऐसे पंखुड़ी सी बसी
लगता है नाव है रेत में धँसी

कोलाहल घर गये बाधवन के
मन की चमक गीत में भी दमके
खुशी ने नई पायल है पहनी
मुनिया का पिता चला है तन के

उंगली प्रीत की अंगूठी कसी
नये-नये नेहों की दुनिया बसी।

2/16/2017

♦

नीलकमल कहता

तितली को चुप देखे
अब कनेर कहता है
जाने किस रितु का जल
आँखों में बसता है

धूलों को न्योत हवा
खोले खिड़की अपनी
बादलों को बुलाया
देखीं राहें कितनी
पूरी बस्ती अब तो
नीलकमल कहता है

पूरब की लाली ने
कलरव को गीत दिया
नया गीत गाकर ही
दिन को मकरन्द किया
सौ सिन्दूरी बातें
दिन पलाश लगता है

पानी से खेतों में
ये बीहन अँकुरेंगे
धूप भरी देहरियाँ
रिश्तों के पुल होंगे
कुछ दिन गाये इतने
अब मादल बजता है।

19/9/2017

♦

फूलों के कानों में

आयी है जब से शालीना
मौसम लगा बदलने
फूलों के कानों में तितली
लगती है कुछ कहने

नीले निशान दीखे
उस पोखर के जल में
चिड़िया की आँखों में
दिखे गीत इस पल में
आसमान में उजले बादल
लग जाते हैं उड़ने

बाधों में हरियाली
कहीं भी नहीं छिपती
पुरइन के पत्तों पर
रही कथाएँ लिखती
पूजा की थाली में लगते
नए कपूर गमकने

नहीं जानती नीली
चिड़िया क्या है करती
हरियर सेंवारों में
अपनी चोंच भिगोती
बच्चों की आँखों में लगते
हरे सपन यों जगने।

4/10/2017

♦

पीली धोती में

बात-बात में दिख जाती है
मन की कुछ अनबन
गंधों से श्रेयसी, अभी ही
आसिन है अगहन

देर रात नेहों में भीगी
रहती है धरती
हरियाली का आसव पीती
मोह-मान करती

पीली धोती में पाहुन सा
लगता है अनमन

कच्ची बाली बड़ी दूधिया
लगती धानों की
माँ के नैहर की चूड़ी में
लय सौ चानों की

उजली कौड़ी छः लेने का
मचा हुआ 'धनसन'
सागर ने नदियों को देखा
मन से इतराया
ताल मखाने की खुशियों को
बाँध नही पाया

पहला-पहला प्रेम आँख से
जी लेने का मन।

5/10/2017

◆

हरियाली लय की

जैसे उगती धूप नयन में वैसे
उगा करो

घर के बाहर सजी हुई है
हरियाली लय की
चिड़ियों की रखवाली में है
नई धुनें गमकीं

नयी झील जैसे पढ़ती सूरज को
पढ़ा करो

कटे धान के खेतों की भी
होती है भाषा
अपने-अपने मान बहुत हैं
अपनी परिभाषा

लिखती जैसे नदी लहर की वैसे
लिखा करो

छन्दमुक्त कविता गीत में
ढली नहीं जैसे
सहज लालसा मन की मन में
पली नहीं जैसे

मन जैसा मन रहे लोक से जुड़कर
जिया करो।

23/10/2017

♦

हिले हैं धान

गमकते हैं दालान
हवा बह रही अगहन की
लय में हिले हैं धान
पत्ती हिलती पुरइन की

रोजाना नहीं दिखे
धानों की कटी ये जड़ें
होगा अब रास्ता जो
इधर को ही अब तो मुड़े
कनेर के रंग बिछे
आ गयी है सुर में तान

पूछकर नहीं आते
पता जो इस नया घर का
आज उसके लिये ही
वायाँ पग भी रहा रुका
देख लगती नदी को
अपनी लहर भी अनजान

कुछ रेखायें उलझी
कोमल-नरम हथेली में
फूल-वनों के किस्से
उड़ते नयी नवेली में
आ गया पहन मौसम
कोमल जलों के परिधान।

23/10/2017

◆

फूल के गहने

फूल के गहने पहनकर
हँसती धरती
फिर होगा निहाल सूरज
जगती परती

पोखरों के साफ जल में
पात पुरइन के दिखे
गा रहे हैं गीत कोमल
आज फिर मन के लिखे
है बाघ-वन से लौटती
मंत्र पढ़ती

कब से रहे अधूरे जो
काम अब तक हैं पड़े
मन से मन के रिश्ते में
राग कितने अब जुड़े
सही बहुत कुछ कहने को
न, नहीं कहती

मन ही जब मिले नहीं तो
फिर से बात हो कहाँ
अपना मन मिले कहीं जो
सौ फागुन झुके वहाँ
बातें सब शालवनों में
घूमा करतीं।

7/11/2017

◆

उलझी रही हवा

नहीं न आराम एक पल भी
उलझी रही हवा कामों में

बदल न पाई तीन दिनों से
चादर पीली हरियाली की
खिड़की के सादे घाटों पर
सूखा पत्ता भी है बाकी

अभी धूप की चंचल टोली
रंग भरेगी दालानों में

अभी भरी कलसी पीतल की
फूलों को रखना भूल गयी
तुलसी चौरों पर दीयों का
साज-सँवरना ही भूल गई

बच्चों के उठते आएगी
अपने खेतों-खलिहानों में

तीन दिनों से ही पड़ोस से
नहीं हुई कुछ भी हैं बातें
अकुलाई है भीतर मन से
इस दिन की तरह न हों रातें

मन को भी तो बाँध दिया है
बाकी सारे सामानों में।

10/11/2017

◆

पहला प्रेम

पोखर के कुँइयों से हम
कितने अनजान रहे
बहुत अधिक पानी में भी
बहना न हमें आया

हम थे बड़े मनोरथ वाले
थे अपने जाने-पहचाने
अपनी सी दूसरों की बात
को हम पहले से ही जाने
नदी-दूब का पहला ही
फूल हमें तो भाया

बाबूजी जब से ये पढ़ते
सामवेद के उजले पन्ने
हम भी मन ही मन लगते थे
और बहुत से भी कुछ करने
पिछले दिन के जामुन का
स्वाद याद भी आया

दिखी नहीं थी बहुत दिन हुए
छोटी सी मछली धारों की
बहुत दिनों से सुनी भी नहीं
कथायें उन ध्रुवतारों की
सजने की खातिर तुमको
रंग फूल का लाया।

12/10/2017

खुशबू के आखर

फूलों से सुनते हैं –
लगता है आसान महीना
खुशबू के आखर को
पढ़कर सीखा सुख से जीना

मन की बेचैनी कहने की
आदत उसे नहीं
तितली ने कबीर की चादर
ओढ़ी भले सही

उड़ती रहती दिनभर
बहता रहता उसे पसीना

छोटी बातें भी लगती थीं
उसको बड़ी-बड़ी
धूपों-छाँवों को एक सीध
लेकर रही खड़ी

धूल भी उसको लगे
कीमती नया बड़ा नगीना

खरचे कम नहीं रहे उसके
आमद से दिन के
रोती कभी तो वर्षा-सूरज
दिखते दुपहर के

ऊँच-नीच का आसव
उसको पड़ा बहुत है पीना।

22/11/2017

♦

फूलों के दिन

दिन दिखते फूलों, खुशबू के
होता साथ हवाओं का

कितना तब अर्थ गमकता था
अपने मामूलीपन का
बच्चों की हँसी-खुशी में भी
झरता अमलतास दिन का

गमले फूलों के, गंध उठी
होता साथ दुआओं का

अपने ही घर में दुनिया के
सारे काम भरे होते
फुरसत कहाँ कि उस पड़ोस के
पीले कुरते को देखें

गपशप नदी और बादल की
होता साथ विभावों का

कोने में भी होतीं तो वे
उजली सी दिख ही जातीं
पढ़ी हुई बातें किताब की
सबको है पास बुलातीं

नाम एक टहनी का लेना
होता नाम जवाओं का।

18/12/2017

◆

दूब सी फैली

आखिरी सीढ़ी है साल की
जहाँ खड़े हैं हम
छाँव भी है, धूप भी गुनगुन
लगे बड़े हैं हम

पन्ने बदलते डायरी के
दिनों के शोर में
है सामने नदी लहरी सी
उमंगें जोर में

दूब सी फैली दिशाओं की
जड़ पकड़े हैं हम

हिलते हैं टहनियों के पात
संग हवाओं के
खुले इधर पन्ने पहाड़ों पर
सुरभि-घटाओं के

भींगते ओस में दूबों से
सहज भरे हैं हम

मधुमाधवी झूमती फिर-फिर
सच, कनेर मुसके
घटवारे गाते हैं थिरके
पंख परेवा के

कोमल प्रेम कीमती अपना
नगद जड़े हैं हम।

23/12/2017

♦

खुशबू के घर में

नदी सँजोती हरी भावना
तट से मिलकर लौटी लहरें

चिड़िया ने पेड़ों को चाहा
मौसम को पेड़ों ने
जमा हुई सारी अनकहनी
कह दिया सबेरों ने

उत्सव है खुशबू के घर में
सब दिश लगे हवा के पहरे

कई दिनों के बाद दूब की
लौटी है हरियाली
आने-जाने वाली राहों
के घर है दीवाली

फिर से खपड़ैलों के मन में
मीठे वही कथानक दुहरे

घर में ही आ पहुँचे तब से
कितने तीरथ-मेले
कोई बता मनोरथ अपने
मन की चीजें ले ले

साँसों की भाषा में मन के
सपनों में अपनापन उतरे।

18/1/2018

◆

हवा बाँटती गीत

फलक तुम्हारे आसमान में
कितने तारे हैं
तुमने गिना नहीं

पत्ते वैसे हिलते नहीं
तुम्हारे पेड़ों के
जैसे हम सबके हिलते
अनारों-आँवलों के
हवा बाँटती गीत, कई से
जले सितारे हैं
तुमको दिखा नहीं

उत्सवों से हैं छाँहों में
सब जादू-टोने के
मंत्र-गीत बजा करते
ये बहुत करीने से
होते मुखर मौन हैं जब से
सुर में नारे हैं
तुमने सुना नहीं

इन्द्रधनुष थे तने हुए
रुकी रही थी बरसा
लगाव पीले कनेर का
आँखों से भी सरसा

जो भी मिले बहुत ही मन से
धन ये सारे हैं
तुमने कहा नहीं।

12/4/2018
अरविन्द-विशाखा का तीसवाँ
विवाह-दिन मनाने हम ताज फलकनुमा गये।

♦

अकेली धूप नहीं

अकेली धूप नहीं है सुनो
सूरज साथ बँधा है उसके
मौसम ने भी स्नेह-सुरभि से
सजा दिये हैं नूपुर पग के

डूब-डूबकर पार उतरना
कला बहुत उसको है आती
रथ पर सात हवाओं के भी
खूब चली है झूमर गाती

बोली कभी नहीं निकली थी
अब तो शब्द बोलते उसके

चढ़कर लतर पर दीवार की
हरियाली से हाथ मिलाती
गेहूँ सुखा रही किसान की
बहू वहीं सुर-ताल सजाती

कोई हिरना छाँह तलाशे
हाथ जुड़े होते हैं उसके

देख खेत में हम धूपों को
वहीं पेट की भाषा पढ़ते
बेशुमार कवितायें मन की
ईखों के पत्तों पर लिखते

लाल रंगे बैल के जोड़े
समझे बहुत बहाने उसके।

23/4/2018

♦

अनमना मन

कुछ जरूर फूल ने कहा
तेरा मन अनमना हुआ
तुम तो जानो वासंती
आँखों की हो तुम पुतली

तेरे बिन उदास रहता
आंगन पीले फूलों का
मना नहीं पाती पुरवा
हठ इन हरे दुकूलों का
जैसे इन्तजार वाला-
खत तुम हो लगती तितली

बहुत दुखाती है जैसे
चमकी धूप दोपहर की
सपने भरी आँखें खड़ी
रह जाती हैं इस घर की
पोखर में जैसे बूँदों-
के मन की बातें उछलीं

हवाएँ कील सी चुभतीं
शब्द भरे अर्थ खाली से
अब तो कठिन लगे कोई
धुन सुनना 'भटियाली' से
जल पर थर-थर नावों की
पीड़ाएँ फिर-फिर मचलीं।

26/4/2018

♦

काँटे चुभाता समय

काँटे चुभाता है समय
मन का नहीं होता
रहते रहे जैसे कभी
रहना नहीं होता

दीवारों पर लतरों को
थे जब भी चढ़ाते
साँस में कई खुशियों के
उत्सव समा जाते
बुलाते वन के हिरन जो
मन का चैन बोता

मोड़ देते रुख हवा का
पाखी कहा करते
अब नहीं गीत नयनों के
होठों पर उतरते
चुप कराता नहीं सुनता
खाली समय रोता

फुनगी पर दूब की हिला
करे हवा गीत की
पासवाली छोटी नदी
सूख रही शीत की
समय केवल लौटता है
आँखों को भिगोता।

1/5/2018

◆

चुप रखता समय

धीरे-धीरे भीरु बनाता
समय हमें
कड़ियाँ उलझन की पहनाता
समय हमें

डूब-डूब जाते थे
उजली उन लहरों में
पोखर के पुरइन के
पत्तों के पहरों में
ऐसा करता चुप ही रखता
समय हमें

मन रखते थे खोले
होते विचार अपने
नहीं पूछते सबसे
रखते आगे सपने
नहीं पूछता कभी बुलाता
समय हमें

फूल भी फेंकने से
हाथ बहुत थे दुखते
उठाते पत्थर को
नहीं पसीने दिखते
अब घर नहीं मकान दिखाता
समय हमें।

3/5/2018

♦

साँस बो रहे

भूख तो कहीं पर प्यास बो रहे
खेतों में किसान साँस बो रहे

पानी इतना ही खेतों की
प्यास नहीं बुझती
बीजों को चिड़िया ऊपर ही
ऊपर चुन लेती

अंगोछे में मेड़ पर सो रहे
धनिया का बिछिया बेच सो रहे

मन तब था हुमसता ईख के
पत्ते जब हिलते
धान की बालियों से सपने
भात के गमकते

मेघ मन पानी-पानी हो रहे
इच्छाओं की कजलियाँ धो रहे

बेटी का शुभ दिन गौना का
हल्दी रंग पानी
आंगन से दलान तक दीखी
पात सजी छानी

घर गीत-नाद से सजे हो रहे
नई खुशी मांदर पर सँजो रहे।

3/5/2018

◆

दौड़ने लगती सड़कें

कोलाहल मन के कोने में होता
लगती खूब डराने दुनियादारी
सोने में भी अब चैन नहीं होता

कोई कहे उधर मत देखो
कोई कहे इधर से चलना
जो भी सुनो रखो मन में ही
नहीं किसी से कुछ भी कहना

ऐसा तो हुआ नहीं था पहले जो
जाने क्यों है अब ऐसा ही होता

दिन भर सबके लिये शुभ रचे
होते रात श्लोक सुमिरना
थोड़ी हँसी बहुत रोने में
सुबह-शाम 'काली' का जपना

माँ की यादें कभी न जातीं मन से
मन में रहना बहुत पिता का होता

अब खिले हुए फूलों में भी
मुरझाना लगता है दिखने
चिड़िया बाँध रही है डोरे
रितु, हवा, मेघ लगते मिलने

होते सुबह दौड़ने लगतीं सड़कें
घर में कोई भी अपना सा होता।

5/8/2018

♦

अधरों पर लालिमा

अधरों पर लालिमा लिये
अंतर बहती स्याह नदी
ऐसी समकालीन सदी !

पसर गये बाजारों में
संबंध चीज में बदल गये
बिकते खून-पसीना में
मन के मीठे दिन विफल गये

दुखती जेठ महीने में
भी है भीतर की सरदी !

होता था माँ कहने से
परव-तिहार नया सा घर में
नेह लुटाते पिता नमी
बाँटा करते कठिन पहर में

बहती थी अपनापन की
वह अपनों के बीच नदी !

कौन पराया अब तो है
अपनों का ही अनुमान नहीं
मिलकर इन अँधेरों से
रोशनियों की पहचान नहीं

हरे गाछ-पात सूखते
नेकी को भी मिले वदी !

10/5/2018

♦

पहले जैसा नहीं

बादल बरसता था पहले भी
आज भी बरसता है,
पहले जैसा नहीं

हवा बहती है चुपचाप
चली जाती है
गाती है चिड़िया आकर
चली जाती है

मौन अटकता था पहले कभी
आज भी अटकता है
पहले जैसा नहीं

पेड़ हैं खड़े दम साधे
प्रश्न बने से
सूतें सपनों के बुनते
अधबुने ऐसे

सूरज सरका था पहले कभी
आज भी सरकता है
पहले जैसा नहीं

चौराहा भरमाता था
मन नहीं उदास
थीं बहुत सी लाचारियाँ
घिरीं आसपास

इरादा बिका था पहले जभी
अब भी तो बिकता है
पहले जैसा नहीं

उजली खिलती थी कब से
झर गई बेला
देख ही पाये नयन से
घर गया मेला

हँसता था कहानी में राजा
आज भी विहँसता है
पहले जैसा नहीं।

18/5/2018

♦

बेलपत्र पर फूल

दुख ने दुख को साथ किया
सुख के घर आया
लिख देहरी ने शुभ सुदिन
मिल मंगल गाया
अब दुख परिचित सा लगता
अपना बहुत सगा

बुलाते देखकर उसको
खिड़की-दरवाजे घर के
कोई कमी नहीं होती
आदर में भी ऊपर से
परव-तिहार मना दुख का
लगता अधिक जगा
बेलपत्र पर रखे हुए
ये दिन फूल मालती के
सुकून से मिले हवा में
कपूरी दिया-बाती से
सचमुच माँज रहा मन को
सुख में रहा पगा

19/5/2018

♦

अपनापन से घर

जैसे तुम आयी, मैं भी आई
अंतर यही कि मैंने इस घर को
अपना माना

ऐसी किताब पढ़कर आई
सब पन्ने अपनी ओर खुले
दरवाजे से मना हवा को
फूलों की थोड़ी गंध मिले
गुम हो अपनी दुनिया में सबको
सपना जाना

पता नहीं ऐसा भी होता
घर में एक अलग घर खुलता
कोई लाख सोच ले तुमको
कोई इससे फरक न पड़ता
'अकेलापन' 'एकान्त' का जरा
अर्थ बताना

अपनापन से अधिक सुगंधित
फूल नहीं होता बगान का
अपनापन से ही घर होता
वरना वह ढाँचा मकान का
अलगनी पर टँगी हुई धूप को
सुख ने जाना!

20/5/2018

♦

रुका मेघ बरसे

पता था किसको रह जाओगी
इतनी अकेली

कहते हैं सबकुछ तो है
लोग जिनके लिये तरसे
सब ठीक दिखे बाहर से
भीतर रुका मेघ बरसे

पता था किसको बन जाओगी
खुद ही पहेली

सपने दीखे आँखों से
तुमने तो मन से देखा
उलझ लालसा के वन में
पीछे मुड़ी समय-रेखा

पता था किसको कह पाओगी
अपनी सहेली

उगता दिन सवाल लाता
मरुथल रात में जगाता
हुई दुपहरी काँटों की
कहीं तो चैन मन पाता

पता था किसको सह पाओगी
दुखती चमेली।

25/4/2017

♦

नमी बचाये हम

चले कठिन दिन में भी
हँसे हँसाये हम
जितनी धूप नहाये
नमी बचाये हम

नून, तेल, रोटी खा निकले
सुबहें लगीं सुहानी
दुपहर दिखा भात तो जाने
अपनी अलग कहानी

लाल कमल पोखर में
रंग लुभाये हम
छोड़ जीत के किस्से
बड़े उड़ाये हम

गाय नहीं थीं माँएँ अपनी
खेतों में दिन उनके
रोपे बीहन हरे धान के
हाथ चूड़ियाँ झनके

पाखी को समझाये
पास बुलाये हम
भय से जिनगी छोटी
यही सुनाये हम

सुलभ था कोई नहीं रास्ता
पूछते हवाओं से
गाँवों को धूप के बनाये
जूझते पसीनों से

जीवन में सबके ही
मोल चुकाये हम
सुख-दुख किस्से अपने
लिखे लिखाये हम।

11/6/2018

◆

नदी नहीं बहती

वैसी नहीं हुआ करतीं
जो चीजें जैसी लगतीं

छोड़ नदीपन कोई
नदी नहीं बहती
घटा बीच सूरज की
तपिश नहीं मरती

अपने ही मन की तितली
जब जो भी चाहे करती

तेज हवा में पाँखें
नहीं रुका करतीं
ये जामुन-आम नहीं
बँसवट में रह लेतीं

तब जो जैसी भी होती
सब दिन वैसी ही लगती

फुर्सतों के दिन जैसे
दाने मूंगों के
बैठे भी बाहर के
आहट सब लेते

कहीं रुकी बातें जुड़तीं
एक कहानी सी लगती।

7/7/2018

♦

इन्तजार आँखों का

आपसदारी, रिश्ते-नाते
कहाँ गये
समझौते केवल समझौते
नये-नये

इन्तजार आँखों का
काला हिरण हुआ
खोजे जंगल में जल
प्यासा कंठ सुआ
बोल सहज मीठे-मीठे से
कहाँ गये

अब आएगी आँधी
कहकर गई हवा
रंग बचाती अपना
टहनी ओट जवा
परस मुलायम हाथों वाले
कहाँ गये

सपनों में नींद भरी
अब केवल सपने
झीलों की लहरों में
सुरवाले गहने
लेकर नाम पुकारे जो दिन
कहाँ गये
समझौते केवल समझौते
नये-नये।

11/7/2018

♦

घर हो अपना

चले गये आँधी-पानी के दिन
चिड़ियाओं ! चुन तिनके

चौमासे में बच्चे को लेकर
बेचैन रही
फटी हुई सुजनी को ही सीकर
दिन-रैन रही

इन्द्रधनुष वाले आये हैं दिन
चिड़ियाओं ! चुन तिनके

नहीं कोई सुख इससे बेहतर
घर हो अपना
फुआ-दादा-दादी-माँ-पापा मिल
देखें सपना

न्योता लाये फसलों वाले दिन
चिड़ियाओं ! चुन तिनके

शांति सुमन

मेड़ों पर चरवाहे ने गाया
बदली सुर की
उजले-उजले मेघ उड़े हँसकर
आँखें फरकीं

आये आकाश घेरने के दिन
चिड़ियाओं ! चुन तिनके।

30/7/2018

♦

माँ के सम्बन्ध

बेच सकोगे ओ बाजारों !
क्या माँ के सम्बंध
अवलम्ब पिता के
पत्नी के अनुबंध-
मंत्र शुचिता के

केवल भरमाया तुमने
लोगों को बहकाया
चीजों में रंग-बिरंगी
बिखरा अपनी माया

बचा सकोगे ओ बाजारों !
तुम फूलों की महक
रंग पंखुड़ियों के
हरे खेत की हँसी
उजाले परियों के

मिटा सकोगे ओ बाजारों !

किसानों की फसलें
आँतों भरे तसले
भूखा घर देखता
कौन मरता पहले

हटा सकोगे ओ बाजारों !
बिछी जो परछाईं
आँखों बसी झाँईं
पिता ने घर बेचा,
खरीद ली दवाई

लगा सकोगे ओ बाजारों !
पोस्टर टूटे घर
इस फटेहाली पर
आबरू बेटी की
इसी चौराहे पर

ओ बाजारों ! ओ बाजारों !!

3/8/2018

♦

खेतों को पता नहीं

रात भर कहाँ बरसते रहे बादल
चिड़िया को भी पता नहीं

आँख के काजल बने
वन-वन घूमते फिरे
ये इन्द्रधनुओं से
मिले नहीं न बिखरे

रात भर कहाँ सरसते रहे बादल
खेतों को भी पता नहीं

पल-अनुपल क्या मिलता
अधिक ही भटकने से
गली, बाजार-टोले
पाँवों को तकने से

रात भर कहाँ गरजते रहे बादल
सागर को भी पता नहीं

कंठ हरसिंगार के
सूखे बिना ओस के
हवा ने गाये गीत
चुप से पेड़ कोसते

रात भर कहाँ सजलते रहे बादल
न, केतकी को पता नहीं।

7/8/2018

♦

डरा अपनापन

बातें हैं कहने की
छोटी बातें नहीं डरातीं
डर तो एक पात के
ही गिरने से भी लगता है

सभी बदलते इतने
भरोसा के सामने भय है
अपनापन रहे डरा
हारा पसरा हुआ समय है
अपना साहस अपना
दमखम रखने से रहता है

दिखने में अब आता
झीलों का पानी बदल रहा
सड़कों, जंगल-जल का
रंगा शीशा भी दरक रहा
हाथ कस लो हौसला
सामने दीखने लगता है

छूटे नहीं देहरी
बाहर की दुनिया भी अपनी
रूढ़ियाँ अँधेरे की
जली हाथों में आग इतनी
पथ रोकेंगी माँयें
समय को मानना पड़ता है।

3/9/2018

◆

अपनी नियति लिखो

तुम केवल श्रद्धा नहीं,
शौर्य, साहस भी हो,
तुम खुद अपनी नियति लिखो
ऐसा पारस भी हो!

सड़कों, जंगल, जल में
जहाँ अँधेरे ही थे
जहाँ तुम्हारे लिये
मृत्यु के फेरे थे
अँधेरे से निकलो, सुनो,
तोड़ती कफस भी हो !

अलंकार की कारा
को तीर-कमान करो
पाँवों के ही नीचे
मन का संताप धरो
इस बढ़ते हुए समय में
उजलाया यश भी हो !

सुन मुनादी धूप की
रोको सैलाबों को,
बढ़ते हुए अँधेरे –
कमजोर किताबों को
निर्भया की इन यादों में
उसका मानस भी हो।

3/9/2018

♦

निर्भय चिड़िया

बढ़ो आगे, छू लो आकाश
बेटियाँ, करो कोशिशें !

दूषित करके सम्बंधों को
बाजारों ने
मन को भी देह बना डाला
हथियारों ने

देहरी से बाहर हो, कास-
सा झूमता मेघ हँसे

ऐसी तो कोई रूढ़ि नहीं
बाँधे तुमको
ऐसी कोई अर्गला नहीं
साधे मन को

हुए सड़कें-जंगल-जल पास
लहर के हैं तार कसे

देखो तो दुनियादारी को
अपनी आँखों
उड़ती जैसे निर्भय चिड़िया
अपनी पाँखों

नहीं मिला करता है मोती
पानी-संग बिना धँसे।

7/9/2018

♦

सेनुर लगे हाथ

रोपे तुमने फूल-फूल केवल
मैंने काँटे
सुख-दुख सारे दोनों इसी तरह
हमने बाँटे

छान पर बैठती जब चिड़िया को
यह खुशी हुई
दादी के सब सपनों की दुनिया
तब बड़ी हुई

राहों में बाड़ों के लोहे को
मिलकर काटे

आंगन में सजते त्योहारों से
लगते बच्चे
तब लालिम सुख सारे के सारे
लगते सच्चे

सेनुर लगे हाथ दीवारों पर
हमने साटे

लगती हैं नयी-नयी नौकरियाँ
लो, ईद जगी
भाग गये हैं सारे दुख अबसे
यह नींद सगी

बोलती 'मुनरी' अब लगे कैसे
उसको घाटे।

25/9/2018

♦

उत्सव के पंख

इस अक्तूबर में
देव-पितर सब जमा हुए
मेरे घर में

जलतरंग बजाती
मिलकर दोनों धूप-हवा
हँसती हरी हँसियाँ
इन छाँवों में लाल जवा

उत्सव के भी पंख लगे
मेरे घर में

नारंगी-बैगनी
नये रंगों संग कुरते
रंगोली ओढ़नी
की हैं नयी नयी परतें

मौसम आकर ठहर गये
मेरे घर में

जालीदार फ्राकों
में कत्थई दिखा ऐसा
शरत हँसी में कमल
उजला-लाल खिला जैसा

द्वारे पान-मखान सजे
मेरे घर में
इस अक्तूबर में।

6/10/2018

◆

सूखी रेतों में

चलता केवल समय इन दिनों
सब कुछ रुका हुआ

डालों पर खिलने को आतुर
कलियाँ सहमी सी
डैनों पर चिड़ियों के जैसे
बर्फ नयी जमी सी

मटमैला पानी पोखर का
जैसे थका हुआ

फूसों के छाजन पर निशदिन
बादल जब घिरता
नहीं रहा वैसा मन सपनों
में झिलमिल होता

आ जाता पाँवों के नीचे
जामुन पका हुआ

जैसे रसता बन जाता है
फसलों-खेतों में
जैसे फँसती नाव नदी की
सूखी रेतों में

दिन ऐसा अनमना हाट में
सपना बिका हुआ।

12/10/2018

♦

रंग नीलकमल के

धुंधभरी सुबहों के दिन आये
रंग नीलकमलों के गहराये

जल में बतियाती हैं लहरें
कोमल पात कुई के सिहरे
जैसे हो कितने अर्घ्य लिये
आकंठ डूब जल में ठहरे

भोर ने रात के दिये बुझाये
बुने हुए घने स्नेह के साये

गठरी कन्धे पर सपनों की
खोज रही आँखें अपनोंकी
नमी आजतक रही बनाये
चिड़िया भी सुनसान वनों की

मुट्ठीभर नयी जागीर बचाये
कलियाँ भी अपने दायें-वायें

छपे-छपे लगते हैं मंदिर
जल के मोती दूबों के सिर
जैसे बचपन की दहलीजें
पार करे बेटी कोई फिर

अपने मन में सौ बात छिपाये
जो संन्यासी घर वापस आये।

31/10/2018

♦

जड़ से जुड़े रहे

ईंच-ईंच बिक गये गाँव से
फिर भी लगे रहे
कटे नहीं काटे कैसे भी
जड़ से जुड़े रहे

सूदभरना में खेत की
फसलों की महक गई
याद नहीं कब चिड़ियायें
छानों पर चहक गईं

धनबोझों पर बरसे बादल
ऐसे अड़े रहे

खेतों की गिनती में ही
आता वह गुलमोहर
जिस पर बैठ लालसर था
गाता सुख-सोहर

अर्घ्य लिये कब से सूरज के
जल में खड़े रहे

करे कमाई दिन लौटे
कहकर ही शहर गया
काजल लगा कमीज पहन
भरकर वह खुशी गया

गाँव-घरों के कुशल-क्षेम ले
आँखों भरे रहे।

30/12/2018

♦

गोरी-दुबली धूप

गोरी-दुबली लड़की जैसी
धूप खड़ी खलिहान में
धानों के बोझों पर उतरी
हँसी उसी की शान में

कोहरे लाज में जैसे
कोहबरों के पाहुन
लय में अपनी रचे हुए
खोये अपनी ही धुन

भात पसाती भौजी उनकी
आँखें लगीं मचान में
बिछिया है भूल गई शायद
फूल के उस बगान में

कितनी बार पढ़ी किताब
के पन्ने याद नहीं
मुट्ठीवाली रेत कहा
करती आजाद नहीं

कटे ईंख के खेतों वाली
चिड़िया लगी थकान में
धीमी शहनाई बजती है
गलियों पार मकान में

बान लगा हिरना जैसे
जंगल को खोज रहा
पानी-पानी सपना है
प्यासा मन रोज रहा

बँट जाता मन कभी-कभी तो
परिचय औ' प्रणाम में
बेहद हुआ उदास वही जो
जीता था उपमान में।

12/12/2018

♦

इमनवाली तान

धूप में मन रख रहे हैं
छाँव वाले गीत

भोर होते सुनाई दे
इमनवाली तान
बालियों पर धान की है
तना हरा वितान

रात को भी दिख रहे हैं
सुबह के संगीत

बहुत कुछ हैं लगे जुड़ने
इन दिनों सपन में
अब धुंधों में दिखते हैं
चेहरे नयन में

भरी दुपहर लिख रहे हैं
आँसुओं में प्रीत

दीखती वह नदी चाहे
तको कहीं से भी
है बहुत कुछ होती नदी
हुई कहीं से भी

अभी तक जो टिक रहे हैं
वही अपने मीत।

14/12/2018

♦

खुशी से डर

यह कैसा समय, खुशी से
डर रहा है आदमी
जीवन में हजारों बार
मर रहा है आदमी

हवा हवा की तरह नहीं
हरियाली भी अजीब है
इस हाथ की लकीरें भी
लगती कितनी गरीब हैं

कैसा समय है कि भय से
भर रहा है आदमी
जिस तरह नहीं करना था
कर रहा है आदमी

आती हुई धूप जैसे
धुंध में है बदल जाती
नदी-नाव अब आपस में
है सहज नहीं रह जाती

कैसा समय रोते हुए
हँस रहा है आदमी
कहीं लेने में सौ बार
रुक रहा है आदमी

रेत-रेत हुई मरुभूमि
के पराये सौ दुखों को
कैसा बाँटता है यहाँ
और के भी इन सुखों को

द्वारों के दिये जलाता
जल रहा है आदमी
है सोचता अँधेरे को
सुन रहा है आदमी।

19/12/2018

♦

कोई कह दे

कोई कह दे तुम सा होना
अच्छा होता है
बात बात में बात पिरोना
अच्छा होता है

जाड़े की ठंडी रातों में
है अलाव का सपना
बाहर से आकर पुआल पर
बैठे-बैठे कँपना

कोई कह दे नदी बहाना
अच्छा होता है
कागज पर भी कमल खिलाना
अच्छा होता है

यह देखो बयार जो सिहकी
हिले धूप के डैने
खेतों से आकर बाबा के
बोल हुए कुछ पैने

यह भी अनहोनी सा होना
अच्छा होता है
हाथों में कनेर का दुखना
अच्छा होता है

दिन की आवाजाही जैसे
रातों के चौपहरे
नहीं जानते लोग नदी के
तट पर हैं क्यों ठहरे

आने के जैसा यह जाना
अच्छा लगता है
होता मन जब नहीं पुराना
अच्छा लगता है !

20/12/2018

♦

हरियाती दूब

हम कैसे जानें तुमको जाने बिन
जब नहीं जानने के ढेर बहाने
सपनों में केवल दिखती
है उड़ान पंखों को
लहरों में उड़ते सपने
आते हैं शंखों को
अपने लगते कितने ही अनजाने

खड़ी हवा कब से चौखट
पर है आज सुबह से
जाती धूप नहीं अब तो
कभी किसी को कहके
कौन कहेगा उसके पते-ठिकाने

लहराते धीरे टूसे
हरियाती दूबों के
रेत के तट पर दीखते
बहुत पास हाथों के
बया पंख का झालर चली सुखाने।

20/12/2018

♦

उगी धूप है

तुमने कहा आज का दिन मेरा है
रात से धुंध की उगा सबेरा है

कई दिनों पर उगी धूप है
बाहर घर से बच्चे आये
पिनें चुभो रहीं वर्षा-बदली
मीठी मंद-मंद मुसकायें

तेरा ही सब दिया हुआ मेरा है
एक दिया से भी कँपा अँधेरा है

घर की छान लतरती लौकी
गाती पिछवाड़ी हरियाली
दस लेकर जो एक न देती
ऐसी ही है मूंगावाली

लपटों के बिना धुओं का घेरा है
लालटेन है जुगनू का फेरा है

आधे जल में जाल फेंकता
गोरा मछुवा बड़ा सयाना
तुमने भी तो मन की खातिर
चुन ही लिया नाव बन जाना

सूना तट बुनता जाल सुनहरा है
शुभ दिन फूलों से भरा चँगेरा है।

21/12/2018

♦

शब्द-शब्द माँ के

बेटे जब तुम आओगे घर
शब्द-शब्द माँ के पढ़ लोगे
और बहन के आखर-आखर

घरवाली के मन के मोती
जगती हुई रात में सोती
पूज रही लक्ष्मी-गौरी को
मन में तेरे सपन सँजोती

फूलों से भर-भर कर आँचर

मन तो तेरा मन ही होगा
धूप-छाँह में सावन होगा
कोर पलक के भींगे होंगे
कई बार मन अगहन होगा

आकर जेठ झाँकता पल भर

पिछली होली वाली साड़ी
दीवाली में रंग धुल गए
तुमने भी तो कहा कि कैसे
इस कमीज के सियन खुल गये

छाप हाथ के दिखे भीत पर।

22/12/2018

◆

दिन ही जाने

कैसे-कैसे धूप उगी
दिन ही जाने

पुरवा ने डाँट पिलायी
रूठ गयी पछुवा
चिड़िया के पाँवों से भी
टूट गिरा बिछुवा

लहरों ने मुँह पोंछ लिया
देकर ताने

गरजता ही मेघ आया
बूँदें दौड़ चलीं
खुश लगती हवा भोर की
नींदें लगीं भली

अब लिये जेठ दुपहर के
नये तराने

लड़की पहली बार नदी
पर जाती जैसे
कसकर बाँधे लाल रिबन
खुल जाये वैसे

आये कजरी की धुन के
नये घराने।

4/1/2019

♦

नहीं दीखते दिन

सपनों में निशान मिलते फूलों के

तितली गुनगुन करती भागी
चिड़ियों की भी आँखें जागीं
बिछे कुहासे हैं पानी पर
भूला एक मंत्र विरागी
नहीं दीखते हैं दिन अब झूलों के

लेकर लौटा 'बन' दिनभर का
ईख काटता दिन-दुपहर का
बजती है पायल की झुनकी
हरियाया है मन भीतर का
माथे पर सौ गीत रचे धूलों के

टूसे हाथों में कनेर के
हाटों में किस्से अबेर के
टूट रही कोई परछाईं
हल्दी-दूब-अक्षत सबेर के
बाँधे नहीं गये जल इन कूलों के।

5/1/2019

♦

आँचर का महुआ

आना आने जैसा जाना
जाने सा नहीं हुआ
गिरा मेड़ पर आकर वन से
खुल आँचर का महुआ

मजदूरी दिन भर की केवल
तीन किलो मछली
पिता उदास मगर बेटी की
आँखें यों उछलीं

गाना या चुप रहना उसके
जैसा ही नहीं हुआ
चिहुँक रहा देहरी का नन्हा
वह पाला हुआ सुआ

नहीं पढ़ी जाती जब कोई
भाषा फूलों की
आखर-आखर सी बँट जाती
देहें फूलों की

सुख का कोई जिम्मा लेना
लेना भी नहीं हुआ
बहल जाए कहीं मन ऐसा
समझाना नहीं हुआ

केवल उलझनें नहीं जीवन
में लाखों खुशियाँ
ओसों में डूबी दूबों पर
बिछी हुई मणियाँ

बर्फ ही जमी, नदियों के जल
का जमना नहीं हुआ
हिलने भर से ही हवा, सुबह
का जगना नहीं हुआ।

8/1/2019

♦

अब आये

अब आये
पहले आनेवाले दिन
अब आये
जुगत बनाये थे मन में
अब आये

रंग लुभाते थे आँखों को
होना हरा पात का सुख था
पानी खुश था लहरों वाला
कोई नहीं निशान विमुख था

अब आये
पहले छानेवाले घन
अब छाये

शाम कहीं थी, सुबह कहीं थी
दोनों का था अपना होना
कितना कौन मोहती मन को
यह भी तो था नहीं जानना

अब आये
मौन-मुखर संवादों के क्षण
अब लाये

राग इमन बजता कानों में
पता नहीं था मन को मन का
देखा भी अनदेखा लगता
सोचा नहीं कभी बंधन का

अब आये
कैसे कब के पले सपन
अब गाये।

16/8/2019

♦

आकाश सुहाना

आकाश नहीं दीखा जो
होगा वह बड़ा सुहाना
होता था तब सपनों में
आकर भी जाना-आना

गंध बहाती पंखुड़ियाँ
पंखुड़ियों के नखरे
बाजारों के रंग भरे
सब पंख नहीं उतरे

नहीं समय की आँखें थीं
सच था कुछ नया बहाना
राज भवन का चिड़ियों को
था पिछला पता पुराना

गाती थी नदी अकेली
वैसी भी तो गाती
सुख-दुख साथ लिये अपने
तट को भी समझाती

कहाँ कौन कोंपल फूटी
उसका वह ताना-बाना
एक घरौंदा मिट्टी का
रंगों से ही बन जाना

चुभती थी जब कभी हवा
तपती सी राहों की
बँटता मन नींदों में भी
याद भली छाँहों की

कहते पत्ते आपस में
तुम हवा इधर भी आना
फूही होगी, बादल भी
मिलकर देश राग गाना।

17/1/2019

♦

धूप-हवा से बातें

कोलाहल बच्चों के सूनी गलियाँ हैं
गुलजार

कौड़ी, गोली, कंचे से सीख रहे हैं
घरबार

धूप-हवा से बातें करते
मिट्टी से गढ़ते
पानी पर लिखते पानी से
लहरों को पढ़ते

घर बन जाता है सपनों में सपनों में
बाजार

इनको पता नहीं कोई है
साथी मतलब से
ये सबके साथी हैं खुशियाँ
इनके करतब से

स्वर्ग नहीं वैसा जैसा समझे अपना
संसार

खेल रहे मिट्टी में उनको
नया गढेंगे वे
हरियाली की चादर ताने
गीत बुनेंगे वे

कोई नहीं केवड़ा, जूही, इनके सा
कचनार।

19/1/2019

◆

घर

दिनों बाद आई वह घर
घर नहीं आया

दिन छिप ही गया वस्ते में
खजूरबन्नी के रस्ते में
समय अभी हो गया निडर
घर नहीं आया

शब्दों को रहे सजाते
कमल पलकों के बिछाते
तभी दूर हो गया सफर
घर नहीं आया

भीड़भाड़, कोलाहल से
अपने दूर हुए मिलके
गाँव होते रहते शहर
घर नहीं आया

रंग हरे न हुए पीले
पीतल के कंगन ढीले
मन तो मान जाता मगर
घर नहीं आया।

21/1/2019

♦

आये हम घर

दिनों बाद आये हम घर
घर नहीं आया
अपना भावुक मन रोया
कहाँ-कहाँ कितना खोया
हममें ही कमी बेअसर
घर नहीं आया
रख ही जाते सपनों को
कठिन से मिले अपनों को
रहती उदासी एकसर
घर नहीं आया
बड़ा हिस्सा तुम इस घर का
तुम बिन किस्सा न इस घर का
धूपिया हवा आई पर
घर नहीं आया
बाँधती फसलें पाँव को
फूल के झालर छाँव को
तेज धूप तो गई ठहर
घर नहीं आया।

26/8/2018

♦

सपने साथ चले

जितना घर का सोचा घर
उतना ही दूर हुआ
जन्मों जोया शीशमहल
पल में ही तूर हुआ

कभी नहीं हम रहे अकेले
सपने साथ चले
सुख-दुख दोनों दायें-वायें
हम दिन-रात पले

इन्द्रधनुष सिरहाने का
उतरा सिन्दूर हुआ

इतना भी सबकुछ हुआ मगर
जड़ से जुड़े रहे
खेतों, गाछ-बिरिछ की भाषा
ले हम खड़े रहे

शंख पुराना बाबा की
पूजा से दूर हुआ

परदा लेते टाँग उधर की
चीजें दिखे नहीं
कलमें लाख बदल जाती हो
हम तो लिखें वही

उड़ा कोश जो शब्द भरा
देखते कपूर हुआ।

21/1/2019

♦

घर खोजती चिड़िया

घर खोजती चिड़िया भी
चाहती बातें करना

बगान, आंगन, ओसारे
जहाँ भी जगह मिलती
पाँखें सहला बातों में
खालीपन को भरती

संग खोजे चिड़िया भी
चाहे साथ ही रहना

कि तिल छींटती या चावल
खेतों में अगुवारे
दादी को पता है वहाँ
आएगी मनमारे

दाना चुने चिड़िया भी
चाहती पेटी भरना

सहलाती है देहों को
पंख में सुला लेती
शुभ-लाभ बाँट देती है
बच्चों को उड़ा देती

चैन खोजे चिड़िया भी
चाहती सुख से रहना।

22/1/2019

♦

सब रहे अधूरे

आसमान ने जिद की होगी
तभी हिली धरती

चाँद-सूरज, पेड़ या पौधे
रहते सब रहे अधूरे
बिन धरती के कभी न होते
उन सबके भी मन पूरे

धूप ने राह रोकी होगी
तभी तनी धरती

गीत सुनाती छोटी चिड़िया
बैठी हो मुँह बन्द किये
बिना स्नेह के हुआ न होगा
घर में उसका चैन जिये

आँधी से धूल उड़ी होगी
तभी नमी धरती

पर्व-तिहार और लोगों का
उत्सव में रमते रहना
खेतों में तारों-जुगनू का
सुख-दुख सा छपते रहना
साँसें दुखों की बढ़ी होंगी
तभी थमी धरती।

22/1/2019

♦

उजला आसमान

पत्ते झरे हुए पेड़ों से
खाली आसमान दिखता है
दुखों की घनी बस्तियों में
उजला सा मकान दिखता है

पेड़ों की बतकही नहीं
चिड़ियों की प्रेमकथाएँ
आने-जाने की राहें
दूबों की हरी बिथाएँ

नदी के किनारे कदम्ब का
पीला घमासान दिखता है
मारने को किसानों को यह
ताजा सा लगान दिखता है

रात भर की जगी आँखें
सोचती रही लहरों सी
कोई खत न हवा कोई
जेठीली दोपहरी सी

बैलों की घंटियाँ विहँसता
खेतों का मचान दिखता है
घर से अलग हो रही माँ के
दुख का यह बयान दिखता है

गाता कोई फकीर है
रोता ही जो सो जाता
टूटा वह पत्ता देहरी
पर दुख कोई बो जाता

किताबों के फटते पन्ने सा
उसका स्वाभिमान दिखता है
सपना आँखों का तीर कभी
कभी बड़ा कमान दिखता है।

6/2/2019

♦

रुका हुआ है वहीं

रुका हुआ है वहीं
समय वापस लायें

भोजपत्र पर लिखा
किसी को दिखा नहीं
बजा इमन राग सा
अभी तो बजा नहीं

आँख लगी है वहीं
समय वापस लायें

लहरों पर संगीत
किसी ने नहीं सुना
गलियों वाला किस्सा
रह जाता अधबुना

हवा बुलाती वहीं
समय वापस लायें

छूटती जाएगी
धार जो पास बही
अधूरी बातों सी
नहीं अब साथ रही

खुशबू रहती वहीं
समय वापस लायें।

12/1/2019

♦

चुटकी भर अपनापन

चुटकी भर अपनापन
घर नंदन-वन बनता है
यही नहीं तो जंगल
सब नमी सोख लेता है

तय कर दी बाजारों ने
चीजों में खुशियाँ
दिनभर गपशप में बुनती
मतलब की हँसियाँ

अहसासों में अपने
जब जलतरंग बजता है
इसको ही सुन लो तो
साँकल मन का खुलता है

आपस में नहीं समझने
की यह लाचारी
अब तो संग-साथ रहने
की आई बारी

नहीं भीगती माटी
न कोई गरज सुनता है
इन दिनों ऐसी वर्षा
का ही पृष्ठ खुलता है

सिन्दूरों से लिखी हुई
घरों की देहरी
भोजपत्र पर चंदन की
लिपियाँ फिर दुहरीं

पुरइनों के पत्तों पर
जब गीत कभी लिखता है
खुशियों के झालर में
घर का आंगन खुलता है।

14/2/2019

◆

गीत के एक प्रतिसंसार की रचना

साठोत्तर पीढ़ी के गीत को जो नवगीत और जनगीत के रूप में—नए रूप में ढाला, उसके महत्वपूर्ण रचनाकारों में एक नाम है **शांति सुमन** का। जन्मना मिथिला से जुड़ी शांति सुमन की रचनाओं में जहाँ एक ओर लोक गंध है वहीं नागार्जुन की धमक भी। ये दाम्पत्य की रागचेतना की एक अप्रतिम कवयित्री हैं। सेर्गेई येस्येनिन ने लिखा है, 'कवि होना ऐसा है जैसे जीवन के प्रति निष्ठा होना'। शान्ति सुमन की कविताएँ इसी जीवन-निष्ठा का प्रमाण देती हैं। उन्होंने लय को ही अपनी कविता की ऊर्जा बनायी है। बिम्बात्मकता, भाषा की ध्वन्यात्मकता उन्हें एक अलग पहचान देती हैं। उनमें बांसुरी और शंख दोनों की ध्वनियाँ मिली-जुली हैं। गीत के संसार को उन्होंने एक व्यापकता दी है और कहा जा सकता है कि उन्होंने गीत के एक प्रतिसंसार की रचना की है जिसमें लोक बोलता है, एक विश्वसनीय सहचर की तरह संवाद रचता है और यह दुनिया कितनी सुन्दर है, सुन्दर और बनाओ के लिए आवाज देता है।

—माहेश्वर तिवारी

तुम्हारी बात बोलेगी

पाँच-छः कवियों के बाद बड़े स्नेह से बुलाई गई बिहार की सबसे दुलारी बेटी **शांति सुमन**। कवि सम्मेलन के मंचों पर सज-सँवर कर आने वाली कवयित्रियों की छवि तोड़ती हुई वह ऐसे माइक पर आयी, जैसे 'भानसघर' में चूल्हे पर अदहन चढ़ाकर सीधे आ रही हो। कोई बनाव-सिंगार नहीं, कोई भूमिका नहीं। शास्त्री जी को प्रणाम कर वह सीधे शुरू हो गयी—**'हाथों में एक-दो मूँगफली और कुछ अंतरंग बातें/यादों में तह करके रख लें हम/पार्कों में हुई मुलाकातें।'**

प्रेमाभिव्यक्ति का यह सर्वथा नया रूप था, जिससे मैं रूबरू हुआ था। मुझे लगा जैसे सहरसा की कोसी अपने तटबंधों को तोड़ती हुई सीधे महानगर के पार्कों में चली आयी हो। महाकवि विद्यापति यदि आज होते तो ऐसे ही गीत लिखते। न भी लिख पाते तो कम से कम शांति सुमन की पीठ जरूर थपथपाते। **'तुम न बोलोगे तुम्हारी बात बोलेगी/उम्र भर ठहरी हुई बरसात बोलेगी।'**

सामान्य बरसात तो एक-दो मास से ज्यादा नहीं रहती, फिर यह कौन-सी बरसात है जो उम्र भर ठहरती है? यह बात वही लिख सकता है, जिसका घर कोसी-कमला जैसी नदियों के किनारे बसा हो।

—बुद्धिनाथ मिश्र

Scanned by CamScanner